हमारे आपसी ताल्लुक़ात

खुर्रम मुराद (रह०)

अनुवाद

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

विषय-सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान और निहायत रहमवाला है।'

प्रस्तावना

इतिहास को पढ़ने से यह सच्चाई खुलकर साफ़ सामने आती है कि अल्लाह के पैग़म्बरों (अलैहि॰) ने इनसानी समाज को हमेशा नए सिरे से जोड़ा है। उन्होंने एक बुनियादी दावत की तरफ़ इनसानों को पुकारा है और उस दावत पर ईमान लानेवालों को एक नई एकता (इत्तिहाद) में जोड़ दिया। वे इनसान जो अलग-अलग गरोहों, क़बीलों और असबीयतों (पक्षपातों) में बँटे हुए थे, जो एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे और इज़्ज़त के दुश्मन थे, इस दावत की वजह से एक-दूसरे की इज़्ज़त के रखवाले बन गए। इस इत्तिहाद और एकता से एक नई ताक़त उभरी और आपस में रहमत व मुहब्बत करनेवाले इन लोगों के ज़रिए से अहम तारीख़ (इतिहास) और तहज़ीब (संस्कृति) वुजूद में आई। यही वह सच्चाई है जिसकी तरफ़ क़ुरआन अपने असरदार अन्दाज़ में इशारा करता है—

> "और अल्लाह की उस नेमत को याद करो जब तुम आपस में कट्टर दुश्मन थे, तो उसने तुम्हारे दिलों को जोड़ दिया और तुम उसकी इनायत और मेहरबानी से भाई-भाई हो गए, (बेशक) तुम आग के गड्ढे के किनारे खड़े थे तो उसने तुमको उससे नजात दी (और तबाही से बचा लिया)।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-103)

पैग़म्बरों (अलैहि॰) ने इनसानों को इसी बात की दावत दी है—

> "अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से थाम लो (संगठित हो जाओ), और फूट न डालो।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-103)

इस्लाम की यह इज्तिमाइयत सिर्फ़ ज़ाहिरी इज्तिमाइयत नहीं, बल्कि दिलों की इज्तिमाइयत है। इस्लाम सिर्फ़ क़ानूनी एकता को एकता नहीं समझता। वह इस बाहरी एकता की बुनियाद इनसानी दिलों में रखता है।

इसकी बुनियाद अक़ीदे और नज़रिये (विचारधारा) की एकता, उमंगों और तमन्नाओं की एकता और इरादों और जज़्बात की एकता है। वह ज़ाहिर में भी सबको एक डोर में बाँधे रखता है और अन्दरूनी तौर पर भी उनको एक बिरादरी और भाईचारे में जोड़ देता है, और सच यह है कि सच्ची एकता उसी वक़्त ज़ाहिर होती है जब ये दोनों कैफ़ियतें पूरी हो रही हों। बनावटी एकता कभी पायेदार और मज़बूत नहीं होती। नफ़रत और कीना (ईर्ष्या) से भरे हुए दिल कभी जुड़ नहीं सकते। झूठा रख-रखाव कोई एकता पैदा नहीं कर सकता। वह एकता (इत्तिहाद) जिसका मक़सद अपना निजी फ़ायदा हो, वह टूट-फूट और बिखराव का शिकार होकर रहती है और सिर्फ़ क़ानूनी बन्धन किसी सच्चे मेल-मिलाप और दोस्ती की बुनियाद नहीं बन सकते। यही वजह है कि इस्लाम ने एकता की बुनियाद ईमान, मुहब्बत और ईसार (त्याग) पर रखी है। इस बुनियाद पर बननेवाले ताल्लुक़ात वे मज़बूत चट्टान होते हैं जिससे टकराकर बड़े-बड़े तूफ़ान भी अपना सिर ही फोड़ सकते हैं, उसे कोई नुक़सान नहीं पहुँचा सकते।

फिर इन बुनियादों पर वह समाज बनता और परवान चढ़ता है जिसमें अपने वुजूद के लिए कशमकश (Struggle for Existance) की जगह पर आपसी सहयोग का अमल उभरकर आता है। जहाँ हर आदमी दूसरे का सहारा होता है और हर आदमी दूसरे का सहयोगी और मददगार। जहाँ गिरते हुओं को गिरने नहीं दिया जाता, बल्कि बीसियों हाथ उसकी मदद के लिए आगे बढ़ जाते हैं और जहाँ पीछे रह जानेवालों को छोड़ नहीं दिया जाता, बल्कि आगे बढ़ाया जाता है। यह समाज इनसान को मुश्किलों का मुक़ाबला करने के लायक़ बनाता है और गिरतों को थामने का काम अंजाम देता है।

इस्लामी जमाअत के कारकुनों के लिए यह बात बड़ी अहमियत रखती है कि वे उन बुनियादों को ख़ूब अच्छी तरह समझ लें जिनपर इस्लाम इज्तिमाई ताल्लुक़ात को बनाता है और फिर अपनी क़ुव्वतों को उस मक़सद को पाने के लिए इस्तेमाल करें।

हमारे मोहतरम दोस्त और प्यारे भाई ख़ुर्रम जाह मुराद (रह॰) ने इस्लामी जमाअत के कारकुनों की इसी बुनियादी ज़रूरत को पूरा करने के लिए यह

किताब तैयार की है। ख़ुर्रम साहब ने पश्चिमी शिक्षा के बावजूद दीनी इल्म (शिक्षा) हासिल करने की बड़ी कोशिश की और क़ाबिले-तारीफ़ कामयाबी हासिल की। अगर फूल अपनी ख़ुशबू से पहचाना जाता है तो उनकी यह किताब हमें फ़िक्र (सोच) और मिज़ाज को समझने में बड़ी मदद देती है।

जिस मसले पर यहाँ बात हो रही है उसके अस्ल में तीन पहलू हैं—

(1) इस्लाम उस सामाजिक ज़िन्दगी को बरपा करने और क़ायम रखने के लिए इनसान के किरदार में किन बुनियादी ख़ूबियों को सामने देखना चाहता है।

(2) वे बातें कौन-सी हैं जो इस निज़ाम की बुनियादों को ढा देतीं या कमज़ोर कर देती हैं, ताकि उनसे बचा जा सके।

(3) इन बुनियादों को मज़बूत करनेवाली और इनको तरक़्क़ी देनेवाली ख़ूबियाँ कौन-सी हैं ताकि उन्हें अपनाया जाए।

माननीय लेखक ने इन्हीं तीनों सवालों के जवाब बहुत वाज़ेह अन्दाज़ में तफ़सील के साथ दिए हैं और हमें पूरी उम्मीद है कि अगर इस्लामी जमाअत के कारकुन इनको पूरे ध्यान से पढ़ें और इनको अपनाने की कोशिश करें तो वे इज्तिमाई ज़िन्दगी को ईमान, मुहब्बत और त्याग के उन फूलों से सजा सकेंगे जिनसे ज़िन्दगी के चमन में बहार आती है।

इस किताब से फ़ायदा हासिल करने के सिलसिले में एक बात साथियों के सामने रहे कि सारी चीज़ें इनसान फ़ौरन हासिल नहीं कर सकता। सीरत (चरित्र) को बनाने के मंसूबे की पूरी योजना को समझ लेने के बाद हमें चाहिए कि एक-एक चीज़ लें। उसे ख़ूब ज़ेहन में बिठा लें और फिर उसको अपनाने की कोशिश करें और इसी तरह एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी चीज़ लेते जाएँ।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) के बारे में बयान किया जाता है कि उन्होंने सूरा-2 बक़रा का मुताला (अध्ययन) सात-आठ साल में किया था, जब उनसे इस बारे में पूछा गया तो उन्होंने जवाब दिया कि मैं एक चीज़ को पढ़ता हूँ, उसको अपनाता हूँ और फिर आगे बढ़ता हूँ। सच्चाई यह है

कि सीरत की तामीर (चरित्र-निर्माण) के लिए दर्जा-ब-दर्जा आगे बढ़ने और अनथक कोशिश की ज़रूरत होती है। सिर्फ़ पढ़ना इसके लिए काफ़ी नहीं है। यह मक़सद तो लगातार कोशिश व लगन से हासिल होगा। फिर ख़ूब याद रखिए कि यह उतार-चढ़ाव का रास्ता है और कामयाबी का राज़ हिम्मत और पूरे भरोसे के साथ जी-जान से कोशिश करने पर निर्भर है। नाकामियाँ आएँगी, मगर उनका मुक़ाबला करना है। कठिनाइयाँ सामने आएँगी, मगर उन्हें सहन करना है। दिक़्क़तें पेश आएँगी, मगर उनसे लड़ना है और उनको हराना है। ये तो इस रास्ते के लाज़िमी मरहले हैं। क्या इनसे हारकर बैठ जाएँ—

जूए ख़ूँ सिर से गुज़र ही क्यों न जाए
आस्ताने-यार से उठ जाएँ क्या?

—ख़ुर्शीद अहमद

इस्लामी जमाअत में कार्यकर्ताओं के आपसी ताल्लुक़ात

इस्लामी जमाअत एक इज्तिमाई इंक़िलाब की तरफ़ बुलाने का काम करती है, इसलिए उसकी सबसे पहली और अहम ज़िम्मेदारी है कि वह अपने कारकुनों को आम तौर पर सारे इनसानों से और ख़ास तौर पर आपस में एक-दूसरे के साथ सही-सही बुनियादों पर मज़बूती के साथ जोड़ दे। इस्लामी जमाअत के कार्यकर्ताओं के आपसी ताल्लुक़ात को क़ुरआन मजीद इस तरह ज़ाहिर करता है—

"ईमानवाले तो आपस में भाई-भाई हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-10)

हालाँकि ज़ाहिरी तौर पर देखने में तो यह सिर्फ़ अरबी के तीन शब्दों का एक छोटा-सा वाक्य है, लेकिन सच्चाई यह है कि आपसी सम्बन्धों की बुनियाद, उसूली हैसियत, अहमियत और गहराई ज़ाहिर करने के लिए यह बिलकुल काफ़ी है और इस मामले में इसे एक इस्लामी जमाअत के चार्टर (अधिकार-पत्र) की हैसियत दी जा सकती है।

इससे एक तरफ़ तो यह ज़ाहिर होता है कि इस्लामी जमाअत में लोगों का आपस में रिश्ता एक उसूली रिश्ता है। यह अक़ीदे और फ़िक्र के एक होने की बुनियाद पर क़ायम होता है और मक़सद की समानता इसकी बुनियाद बनती है, यानी यह ईमान की साझेदार होती है जो इसमें रंग भरती है। और दूसरी तरफ़ यह कि उसूली रिश्ता होने की बुनियाद पर यह कोई रूखा-सूखा रिश्ता नहीं होता, बल्कि इसमें जमाव, गहराई और अटूट प्रेम समाया होता है। इसको सिर्फ़ दो भाइयों का आपसी ताल्लुक़ ही ज़ाहिर कर सकता है, और यही ताल्लुक़ है जो भाईचारा कहलाता है। एक उसूली रिश्ते को इस्लाम जो कुशादगी, मज़बूती और जज़बात पैदा करता है इसको वाज़ेह करने के लिए "उख़ुव्वत" (भाईचारा) से बेहतर और कौन-सा शब्द हो सकता है।

इस्लामी तहज़ीब (संस्कृति) में ईमान का तसव्वुर सिर्फ़ इतना ही नहीं कि इनसान कुछ पराप्राकृतिक (Super Natural) हक़ीक़तों का इक़रार कर ले और बस। बल्कि यह अपने अन्दर बहुत से पहलू रखता है। यह एक अक़ीदा है जो दिल पर छा जाता है और रगों में ख़ून की तरह दौड़ने लगता है। यह एक जज़्बा है जो सीने को बेचैन और बेक़रार रखता है, एक सोच है जो मन-मस्तिष्क का साँचा ही बदल देता है। एक अमली निज़ाम को लागू करने की ताक़त है जो सारे अंगों-प्रत्यंगों को अपने प्रभाव में लेकर पूरी व्यक्तिगत और सामूहिक ज़िन्दगी में इंक़िलाब ले आता है। जो ईमान अपने अन्दर इतना ज़्यादा असर रखता हो उसकी पकड़ से इनसानों के आपसी ताल्लुक़ात किस तरह आज़ाद हो सकते हैं, जबकि यह सच्चाई है कि सिवाय एक मामूली से हिस्से के इनसान की पूरी ज़िन्दगी नाम है इनसान और इनसान के आपसी ताल्लुक़ात का। इसलिए यह ईमान अपने माननेवालों को सारे इनसानों से आम तौर पर और एक-दूसरे से ख़ास तौर पर ताल्लुक़ात क़ायम करने की हिदायत करता है। और फिर एक तरफ़ उन ताल्लुक़ात को इनसाफ़ और एहसान (उपकार) की बुनियाद पर क़ायम करने के लिए वह एक सामूहिक जीवन-व्यवस्था और एक तहज़ीब (संस्कृति) की सूरतगरी करता है और दूसरी तरफ़ अधिकारों और ज़िम्मेदारियों पर सम्मिलित एक नियम सुनिश्चित करके देता है ताकि हर आदमी अपने-अपने स्थान पर उसको अमल में लाए और इस तरह जो लोग ईमान के रिश्ते में बँधे हों वे एक-दूसरे से इस तरह जुड़ जाएँ जैसे एक हाथ की उँगलियाँ दूसरे हाथ से जुड़ जाती हैं या जिस तरह एक भाई दूसरे भाई से जुड़ा होता है। और यह उस ईमान की उसूली हैसियत का लाज़मी तक़ाज़ा है जिसके लिए इनसानी फ़ितरत माँग करती है और जिसपर अक़्ल गवाही देती है।

जो लोग हर रंग उतारकर सिर्फ़ अल्लाह के रंग में रंग जाते हैं वे सबकी फ़रमाँबरदारी छोड़कर सिर्फ़ अल्लाह की फ़रमाँबरदारी करते हैं। हर बातिल (असत्य) से कटकर सिर्फ़ सत्य से जुड़ जाते हैं और सिर्फ़ अल्लाह ही के लिए यकसू (एकाग्र) हो जाते हैं, वे भी अगर एक-दूसरे से न जुड़ेंगे, तो फिर कौन जुड़ेगा? मक़सद और नसबुल-ऐन के लिए यकसूई से ज़्यादा बड़ी कौन-सी

ताक़त है जो इनसान को इनसान से जोड़ सकती है? इस यकसूई का एक-एक तक़ाज़ा और सत्यमार्ग की एक-एक मंज़िल इस ताल्लुक़ को एक ज़िन्दा हक़ीक़त में बदलती चली जाती है। जो आदमी सिर्फ़ हक़ के लिए ख़ुद को वक़्फ़ कर दे, फिर वह इस रास्ते पर चलनेवालों में से एक-एक की मुहब्बत, हमदर्दी, तसल्ली और सहारे का ज़रूरतमन्द और मुहताज होता है और अगर इस रास्ते पर उसे यह नेमत भी न मिले तो यह इतनी बड़ी कमी होगी कि जिसकी भरपाई किसी तरह भी मुमकिन न होगी।

इस दुनिया में ईमान का अस्ल मक़सद—यानी आलमगीर इस्लामी इंक़िलाब और इस्लामी तहज़ीब का क़ियाम ख़ुद एक बहुत ही मज़बूत और बिरादराना ताल्लुक़ का तक़ाज़ा करता है। इस मक़सद को हासिल कर पाना कोई आसान काम नहीं है। यह शहादत के प्रेम भरे रास्ते में क़दम रखने के समान है जहाँ क़दम-क़दम पर मुसीबतों की आँधियाँ उठती हैं और आज़माइशों के सैलाब आते हैं। ज़ाहिर है इतनी भारी ज़िम्मेदारी को अदा करने के लिए एक-एक आदमी का साथ बहुत ही क़ीमती है जिसकी कमी को किसी क़ीमत पर सहन नहीं किया जा सकता। ख़ास तौर पर जबकि यह भी मालूम हो कि इस रास्ते में मददगारों और साथियों की हमेशा कमी रहा करती है।

फिर कोई इज्तिमाई इंक़िलाब एक मुनज़्ज़म और ताक़तवर जमाअत के बग़ैर ज़ाहिर नहीं हो सकता, और एक मुनज़्ज़म और ताक़तवर जमाअत उस वक़्त वुजूद में आती है जब उसके लोग एक-दूसरे से जुड़े हुए हों। जब ही इस मक़सद के लिए इतनी मुनज़्ज़म तरीक़े से जिद्दो-जुहद की जा सकती है जैसे कोई सीसा पिलाई हुई दीवार हो, (क़ुरआन, सूरा-61 सफ़, आयत-4) जिसमें किसी दरार और बिखराव को रास्ता न मिले, और ऐसी मुनज़्ज़म जिद्दो-जुहद ही कामयाबी की ज़मानत देती है।

अल्लाह ने क़ुरआन में एक नई-नई बनी इस्लामी स्टेट के चलानेवालों को इस ताल्लुक़ की हिदायत इस तरह की है—

"ऐ ईमान लानेवालो! सब्र से काम लो, बातिल के पुजारियों के

मुक़ाबले में साबित क़दमी दिखाओ, हक़ की ख़िदमत के लिए कमर कसे रहो और अल्लाह से डरते रहो, उम्मीद है कि कामयाबी पाओगे।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-200)

सूरा-8 अनफ़ाल के आख़िर में इस्लामी इंक़िलाब की पूरी कामयाबी के लिए मुसलमानों के आपसी ताल्लुक़ात को उसके लिए एक लाज़िमी शर्त के तौर पर सामने रखा गया है और यह कहा गया कि जो लोग इस दीन पर ईमान लाएँ, उसकी ख़ातिर हर चीज़ को त्याग दें और इस कोशिश में सिर-धड़ की बाज़ी लगा दें, उनका रिश्ता एक-दूसरे के साथ लाज़िमन दोस्ती और मुहब्बत का रिश्ता है और इस रिश्ते के लिए यहाँ वली (सरपरस्त) की इस्तिलाह (परिभाषा) इस्तेमाल की गई है—

"जिन लोगों ने ईमान क़बूल किया और हिजरत की और अल्लाह के रास्ते में अपनी जानें लड़ाईं और अपने माल खपाए, और जिन लोगों ने हिजरत करनेवालों को जगह दी और उनकी मदद की, वही अस्ल में एक-दूसरे के वली (सरपरस्त) हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-72)

और इससे आगे चलकर इस्लाम-दुश्मनों के आपसी मेल-मिलाप और उनकी इज्तिमाई क़ुव्वत की तरफ़ इशारा करते हुए यह कहा गया है कि अगर मुसलमानों ने यह विलायत (सरपरस्ती और दोस्ती) का रिश्ता पैदा न किया तो इनसाफ़, एहसान और ख़ुदापरस्ती की बुनियाद पर एक आलमगीर इस्लामी इंक़िलाब की तमन्ना कभी ठोस ज़मीन में जड़ न पकड़ सकेगी और नतीजे के तौर पर ख़ुदा की यह ज़मीन फ़ितना-फ़साद से भर जाएगी, क्योंकि मुसलमान इस विलायत के रिश्ते के बग़ैर इंक़िलाब की मुख़ालिफ़ ताक़तों का मुक़ाबला नहीं कर सकते।

"और जो लोग हक़ (सत्य) के इनकारी हैं वे एक-दूसरे की हिमायत करते हैं। अगर तुम (ईमानवाले एक-दूसरे की हिमायत) न करोगे तो ज़मीन में फ़ितना-फ़साद बरपा होगा।"

(क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-73)

और ज़ाहिर है कि इस्लामी तहज़ीब के क़ियाम और इस्लामी इंक़िलाब के लिए यह जिद्दो-जुहद इसी ईमान का अस्ल मेयार है।

"जो लोग ईमान लाए और जिन्होंने अल्लाह के रास्ते में घर-बार छोड़े और जी-जान से कोशिश की और जिन्होंने पनाह दी और मदद की वही सच्चे ईमानवाले हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-74)

इससे कुछ पहले अल्लाह ने मुख़ालिफ़ों की तदबीरों के मुक़ाबले में अपनी मदद के वादे के साथ जिस चीज़ से अपने नबी (सल्ल॰) की ढारस बँधाई है वह ईमानवालों की जमाअत है कि जिसके दिलों को अल्लाह ने जोड़ दिया और जो इस्लामी इंक़िलाब की ज़मानत है।

"वही तो है जिसने अपनी मदद से और ईमान लानेवालों के ज़रिए से तुम्हारी ताईद (हिमायत) की और ईमानवालों के दिल एक-दूसरे के साथ जोड़ दिए।" (क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-62)

इस्लामी इंक़िलाब की दावत देनेवालों का यह आपसी ताल्लुक़ भाईचारे का ताल्लुक़ है, विलायत का ताल्लुक़ है, रहमत का ताल्लुक़ है और मुहब्बत का ताल्लुक़ है, लेकिन भाई-चारे का शब्द बड़ा व्यापक है जो अपने दामन में सब कुछ समेट लेता है। इस्लामी जमाअत के कारकुनों को आपस में इस तरह जुड़ना चाहिए जिस तरह दो भाइयों का रिश्ता एक अटूट रिश्ता होता है और वे अपने बीच कोई अलगाव, फ़साद या बिखराव सहन नहीं कर सकते। जिस तरह वे एक-दूसरे के लिए अपना सब कुछ क़ुरबान कर देने के लिए तैयार होते हैं, एक-दूसरे की ख़ैरख़ाही, सहयोग और मदद में लगे रहते हैं, जिस तरह वे एक-दूसरे के लिए मददगार और सहारा बनते हैं, जिस तरह वे एक-दूसरे के दुख-दर्द में शामिल रहते हैं और अपने मामलों में पूरे भरोसे के साथ एक-दूसरे को शरीक करते हैं और जिस तरह उनके बीच मुहब्बत का एक गहरा जज़्बा होता है जो उनके सीनों में मौजें मारता रहता है और उनके दिलों को गर्मी देता है, ठीक इसी तरह का रिश्ता हक़ के रास्ते के उन मुसाफ़िरों का होता है जो दीन के लिए अपनी ज़िन्दगी-भर की पूँजी

लगा देते हैं। जिसे इस्लामी इंक़िलाब से जितनी गहरी लगन होगी वह उतना ही गहरा ताल्लुक़ अपने साथी से बनाएगा, और जिसे जितना ज़्यादा मक़सद प्यारा होगा उसे उतना ही यह ताल्लुक़ प्यारा होगा। क्योंकि यह ताल्लुक़ बिलकुल अल्लाह के लिए और अल्लाह की राह में होता है। सिर्फ़ अल्लाह के लिए और सिर्फ़ अल्लाह की राह में जो आदमी इस्लामी इंक़िलाब की सरगर्मी के साथ दावत देनेवाला हो और उसका लगाव अपने साथियों के साथ ऐसा हो, जैसा रास्ता चलते अजनबी से, तो उसे अपने बारे में सोचना चाहिए कि वह किस रास्ते पर जा रहा है। और अगर उसे अपने उन साथियों से लगाव की बस इतनी ही क़द्र हो जितनी उस गर्द की जो आदमी अपने ऊपर से झाड़ देता है तो फिर उसे सोचना पड़ेगा कि उसके दिल में ख़ुद इस मक़सद की कितनी क़द्र है जिसकी मुहब्बत का वह दावा करता है।

मुहब्बत और भाईचारे का यह वह ताल्लुक़ है जिसके लिए नबी (सल्ल॰) ने "अलहुब्बु लिल्लाहि" (मुहब्बत सिर्फ़ अल्लाह के लिए) की पाकीज़ा, व्यापक और दिल को मोह लेनेवाली इस्तिलाह इस्तेमाल की है। मुहब्बत ख़ुद एक बड़ी आकर्षक और मीठी इस्तिलाह है और फिर 'अल्लाह के लिए' और 'सिर्फ़ और सिर्फ़ अल्लाह ही के लिए' की क़ैद उसे तमाम आलूदगियों और नागवारियों से पाक-साफ़ करके ऊँचाई के इन्तिहाई दर्जे तक पहुँचा देती है और इस तरह यह इस्तिलाह एक ही वक़्त में अक़्ल और दिल को वह पैमाना देती है जिसपर हर ईमानवाला अपने ताल्लुक़ को नाप सकता है।

अल्लाह पर ईमान और उसके रास्ते में मुहब्बत एक-दूसरे के पूरक हैं। जहाँ एक चीज़ होगी वहाँ दूसरी भी मौजूद होगी। एक न होगी तो दूसरी भी शक के घेरे में होगी। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने एक जगह इसका इज़हार यूँ किया है—

> "तुम उस वक़्त तक ईमानवाले न होगे जब तक आपस में एक-दूसरे से मुहब्बत न करो।" (हदीस : मुस्लिम)

और फिर पूरे ताल्लुक़ात को इस बुनियाद पर क़ायम करने और अपनी मुहब्बत और दुश्मनी को अल्लाह के लिए ख़ालिस कर लेने को ईमान के मुकम्मल होने की शर्त ठहराया—

"जिसने मुहब्बत की तो सिर्फ़ अल्लाह के लिए और दुश्मनी की तो सिर्फ़ अल्लाह के लिए, किसी को कुछ दिया तो अल्लाह के लिए और रोका तो अल्लाह के लिए, उसने अपना ईमान मुकम्मल कर लिया।" (हदीस : अबू-दाऊद)

दोस्तियों और दुश्मनियों ने इनसान की ज़िन्दगी पर वाक़ई इस तरह असर डाला है कि उनका अल्लाह के लिए ख़ालिस कर लेना ईमान मुकम्मल करने के लिए अगर ज़रूरी शर्त ठहराया गया है तो बिलकुल तर्कसंगत और वाज़ेह बात है। ईमान की बहुत-सी शाख़ें हैं। हर शाख़ अपनी जगह अहमियत रखती है। अल्लाह के लिए मुहब्बत एक समाज को मज़बूत और ख़ूबसूरत बनाने के लिए और इस्लामी इंक़िलाब के लिए एक मुनज़्ज़म ताक़त को सामने लाने के लिए इतना ज़्यादा ज़रूरी है कि इसके पेशे-नज़र नबी (सल्ल॰) ने इसको एक जगह सारे कामों से ज़्यादा बेहतर क़रार दिया है। हज़रत अबू-ज़र (रज़ि॰) बयान करते हैं—

"एक बार अल्लाह के नबी (सल्ल॰) हमारे पास आए और पूछा कि क्या जानते हो, आमाल में से कौन-सा अमल अल्लाह को सबसे ज़्यादा पसन्द है? किसी ने नमाज़ व ज़कात कहा और किसी ने जिहाद। आप (सल्ल॰) ने कहा कि सिर्फ़ अल्लाह के लिए मुहब्बत और अल्लाह के लिए दुश्मनी, अल्लाह के नज़दीक सारे कामों में सबसे ज़्यादा पसन्दीदा है।" (हदीस : अहमद)

फिर एक बार हज़रत अबू-ज़र (रज़ि॰) को सम्बोधित करते हुए नबी (सल्ल॰) ने कहा, "ईमान की कौन-सी कड़ी सबसे ज़्यादा मज़बूत है?" जवाब दिया कि ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल॰) ज़्यादा बेहतर जानते हैं। आप (सल्ल॰) ने कहा—

"अल्लाह के रास्ते में दोस्ती और उसके रास्ते में मुहब्बत और दुश्मनी।" (हदीस : बैहक़ी)

हदीस में आए अरबी शब्द 'उरा' हल्क़े को भी कहते हैं और उस पेड़ को भी जिसके पत्ते पतझड़ के मौसम में नहीं झड़ते, बरतनों के दस्ते को भी

कहते हैं जिसको पकड़कर बरतन उठाया जाता है। यानी यह कि अल्लाह की राह में मुहब्बत वह मज़बूत सहारा है जिसके बल पर आदमी ईमान के तक़ाज़े पूरे कर सकता है। ऐसा सहारा जो कभी न टूट सकता है और न धोखा दे सकता है।

बात यह है कि ईमान आदमी की पूरी ज़िन्दगी की माँग करता है, यानी ज़िन्दगी का हर पल उस वक़्त तक जब तक कि जिस्म में साँस आ रही है और जा रही है, ईमान के तक़ाज़ों के मुताबिक़ गुज़ारना चाहिए। ज़िन्दगी में इतने फैलाव के साथ अच्छे अमल उस वक़्त तक वुजूद में नहीं आ सकते जब तक कि ईमानवाले के ताल्लुक़ात अल्लाह के लिए मुहब्बत के ताल्लुक़ात न हों, इसलिए भी कि ताल्लुक़ात आदमी की ज़िन्दगी का बहुत बड़ा हिस्सा हैं और इसलिए भी कि ये ताल्लुक़ात उसकी ज़िन्दगी को लाज़िमी तौर पर मुतास्सिर करते हैं और एक तरह से उसकी दोस्तियाँ उसके दीन का मेयार बन जाती हैं। इसी लिए एक तरफ़ तो अल्लाह मुसलमानों को नसीहत करता है कि अपने नफ़्स और ज़ात को उन लोगों के साथ जोड़े रखें जिनकी ज़िन्दगियों में ख़ुदा की याद रची-बसी हो, और इसके लिए सब्र का लफ़्ज़ इस्तेमाल करता है ताकि वे हक़ के रास्ते पर चल सकें और साथ ही अपनी नज़रों को दुनिया के साज़ो-सामान और चमक-दमक से मुतास्सिर होकर भटकने न दें। क़ुरआन में है—

> "और अपनी ज़ात को उन लोगों के साथ ठहराओ जो सुबह-शाम अपने रब को पुकारते हैं और उसकी ख़ुशनूदी के तालिब हैं, और दुनिया की ज़िन्दगी की चाहत में तुम्हारी निगाहें उनसे हटकर और तरफ़ न दौड़ें।" (क़ुरआन, सूरा-18 कह्फ़, आयत-28)

और दूसरी तरफ़ नबी (सल्ल॰) ख़बरदार करते हैं कि इनसान अपनी दोस्ती के ताल्लुक़ात सोच-समझकर क़ायम करे इसलिए कि—

> "आदमी अपने दोस्त के दीन पर होता है, तो तुममें से हर एक सोच-समझ ले कि वह अपना दोस्त किसको बनाता है।"
> (हदीस : अहमद, तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, बैहक़ी)

यहाँ दोस्त के लिए अरबी भाषा में 'ख़लील' शब्द का इस्तेमाल हुआ है। ख़लील शब्द ख़िल्लत से निकला है जिससे मुराद ऐसी मुहब्बत और ख़ुलूस है जो दिल में उतरकर रच-बस जाए। अच्छे और बुरे लोगों की मुहब्बत और संगत की एक बेहतरीन मिसाल हदीस में बयान हुई है। कहा गया है कि अच्छी संगत की मिसाल ऐसी है जैसे किसी इत्र बेचनेवाले के साथ बैठा जाए। अगर इत्र न भी मिले तब भी ख़ुशबू से तो दिल-दिमाग़ तरो-ताज़ा होगा। और बुरी संगत की मिसाल लोहार की दुकान से दी गई है जिसमें अगर कपड़े जलने से बच गए तब भी कालिख और धुआँ तो तबियत को परागन्दा करेगा ही।

ईमान का एक स्टेज वह होता है जब आदमी ख़ुद ईमान और ईमान के अमली तक़ाज़ों को पूरा करने में भी एक ख़ास लज़्ज़त और आनन्द महसूस करता है और फिर नेक अमल की माँग उस लज़्ज़त की वजह से आदमी के अन्दर से उठती है। उसको अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने ईमान की मिठास का नाम दिया है और इसकी तीन शर्तें बयान करते हुए इसमें एक चीज़ यह भी रखी है—

"आदमी मुहब्बत करे और यह मुहब्बत अल्लाह के सिवा किसी और के लिए न हो।" (हदीस : बुख़ारी)

एक ग़ुलाम और बन्दे को अपने आक़ा व मालिक की मुहब्बत अगर नसीब हो जाए तो इससे बढ़कर और क्या ख़ुशक़िस्मती हो सकती है।

एक सच्चे ईमानवाले को अगर अल्लाह की मुहब्बत मिल जाए तो उसकी इस दौलत का बदल उसको क्या मिल सकता है। यह वह मुहब्बत है जो एक ईमानवाले की मेराज होती है और नबी (सल्ल॰) हमें बताते हैं कि जो लोग अल्लाह के लिए एक-दूसरे से भाईचारे का ताल्लुक़ क़ायम करें वे इस बड़ी नेमत के हक़दार होते हैं। इसी लिए हज़रत मुआज़-बिन-जबल (रज़ि॰) यह कहते हैं कि मैंने अल्लाह के नबी (सल्ल॰) से सुना है कि अल्लाह का फ़रमान है—

"मेरी मुहब्बत उन लोगों के लिए वाजिब हो गई जो मेरे लिए

आपस में मुहब्बत करें, मेरे लिए साथ मिलकर बैठें, मेरे लिए एक-दूसरे से मिलने जाएँ और मेरे लिए एक-दूसरे पर माल ख़र्च करें।" (हदीस : मालिक, अहमद)

दुनिया की ज़िन्दगी में तो अल्लाह के लिए मुहब्बत के ये सब नतीजे हैं ही लेकिन आख़िरत (परलोक) में जब आदमी के लिए एक-एक अमल क़ीमती होगा उस वक़्त एक खजूर का सदक़ा (दान) और एक अच्छी बात भी उसके लिए बड़ी क़ीमती चीज़ होगी। उस वक़्त यह ताल्लुक़ एक ईमानवाले के लिए बहुत ही ऊँचे दर्जे हासिल करने का ज़रिआ होगा। और इस्लामी इंक़िलाब के सिलसिले में इस ताल्लुक़ की अहमियत पर जो कुछ हमें मालूम है उसके पेशे-नज़र यह बिलकुल फ़ितरी और लाज़िमी बात है।

उस दिन किसी आदमी को दूसरे का होश न होगा। आदमी अपने माँ-बाप, भाई-बहन, बीवी-बच्चे सबसे दूर भागेगा। आग से बचने की ख़ातिर इन सबको बदले में दे देने को तैयार होगा। दोस्ती की सारी सच्चाइयाँ खुल जाएँगी और दोस्त-दोस्त का दुश्मन हो जाएगा। वही दोस्त जिसकी मुहब्बत दुनिया में दिल-दिमाग़ में घर किए हुई थी। लेकिन सिर्फ़ अल्लाह से डरनेवाले होंगे जिनकी दोस्तियाँ वहाँ भी क़ायम रहेंगी। इस नाज़ुक मरहले में मालूम होगा और उसका ठीक-ठीक एहसास और अन्दाज़ा होगा कि दुनिया में इन दोस्तियों ने क्या कुछ दिया जो आज काम आ रहा है। क़ुरआन में है—

"जो आपस में एक-दूसरे के दोस्त थे उस रोज़ एक-दूसरे के दुश्मन हो जाएँगे, सिवाय ख़ुदा से डरनेवालों के। ऐ मेरे बन्दो! आज के दिन तुमपर कोई डर नहीं और न तुम ग़मगीन होगे।"

(क़ुरआन, सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, आयतें-67, 68)

और इस तरह आदमी का अंजाम उन्हीं लोगों के साथ होगा जिनके साथ उसके मुहब्बत के रिश्ते होंगे। यहाँ तक कि ख़ुदा के लिए मुहब्बत करनेवालों में अगर एक पूरब में रहता होगा और दूसरा पश्चिम में तो ख़ुदा उनको क़ियामत के दिन वहाँ जमा करके कहेगा, "वह आदमी यह है जिससे तू मुहब्बत रखता था।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

वह ऐसा दिन होगा जब पैरों तले आग उबल रही होगी और सिर के ऊपर आग का बादल होगा जिससे अंगारे बरस रहे होंगे। दाएँ-बाएँ आगे-पीछे से आग की लपटें चेहरों को छू रही होंगी और सिर्फ़ एक साया होगा जहाँ इनसान पनाह हासिल कर सकेगा, और वह अल्लाह के अर्श का साया होगा। जो सात क़िस्म के आदमी उस दिन उस साए में होंगे, उनके बारे में अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने हमको ख़बर दी है और बताया है कि उनमें—

"दो आदमी वे होंगे जिन्होंने अल्लाह के लिए आपस में मुहब्बत की, उसके लिए जमा हुए और उसके लिए अलग हुए।"
(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

और नबी (सल्ल॰) पर ख़ुदा की रहमत हो कि उन्होंने हम तक अल्लाह का यह फ़रमान भी पहुँचाया—

"अल्लाह क़ियामत के दिन कहेगा, कहाँ हैं वे जो मेरी बड़ाई की ख़ातिर आपस में मुहब्बत करते थे। आज के दिन मैं उन्हें अपने साए में जगह दूँगा और आज के दिन सिवाय मेरे साए के कोई साया नहीं है।" (हदीस : मुस्लिम)

और उनके लिए क्या ही ऊँचे दर्जे होंगे जिनकी ख़बर अल्लाह ने इस तरह दी है—

"जो मेरी बड़ाई की ख़ातिर आपस में मुहब्बत करते हैं उनके लिए आख़िरत में नूर के मिम्बर होंगे और नबी और शहीद उनपर रश्क करेंगे।" (हदीस : तिरमिज़ी)

अल्लाह के लिए और ईमान की बुनियाद पर आपस में ये गहरे मज़बूत और मुहब्बत के जज़बात से भरे ताल्लुक़ात इस्लामी तहरीक के लिए इतने अहम हैं कि उनकी ख़राबी को बहुत ही चिन्ता की निगाहों से देखा गया है। ताल्लुक़ तोड़ने के बारे में जो कड़ी चेतावनियाँ आई हैं, आपस में मेल-मिलाप करने और कराने के लिए जो वादे आए हैं और ताल्लुक़ात ख़राब करनेवालों के बारे में जो कुछ कहा गया है उसपर तफ़सील से बात तो आगे आएगी,

लेकिन यह बात ज़ेहन में रहना ज़रूरी है कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने आपसी ताल्लुक़ात की ख़राबी और कीना और दुश्मनी रखने को एक ऐसे उस्तुरे से मिसाल दी है जो पूरे दीन को मूँडकर साफ़ कर दे। फ़रमाया—

"यह चीज़ मूँड देनेवाली है, मैं यह नहीं कहता कि बाल मूँड देती है बल्कि मैं कहता हूँ कि दीन को मूँडकर साफ़ कर देती है।"

(हदीस : अहमद, तिरमिज़ी)

इससे मालूम होता है कि इस ताल्लुक़ के असरात कितने ज़्यादा और व्यापक होते हैं। जो लोग भी सच्चे दिल से इस दीन से जुड़ेंगे उनके दिलों से अपने साथियों के लिए ज़रूर ही मुहब्बत के चश्मे (स्रोत) उबलने लगेंगे और यह रिश्ता इतना प्यारा होगा और उनके सीनों में इसकी इतनी क़द्रो-क़ीमत होगी कि वे कोई भी नुक़सान सह लेंगे लेकिन इसको बरदाश्त नहीं करेंगे कि इनकी इस मुहब्बत में कमी आए।

इस्लामी जमाअत के कारकुनों की यह आपसी मुहब्बत, प्रेम और लगाव का वह ताल्लुक़ है जिसे अल्लाह ने अपने सबसे बड़े इनामों में से शुमार किया है और जिस इस्लामी जमाअत को यह नेमत मिल जाए उसपर उसकी बड़ी मेहरबानी है, क्योंकि यह ताल्लुक़ ही जमाअत की ज़िन्दगी और हरारत की ज़मानत है, और लोगों को वह माहौल देता है जिसमें वे एक-दूसरे का सहारा बनकर हक़ (सत्य) की मंज़िलें तय करते हैं और एक-दूसरे को नेकी की राह पर चलाने के लिए बराबर सरगर्म रहते हैं। शुरू-शुरू की इस्लामी जमाअत को अल्लाह ने आपसी एकता, मुहब्बत और भाईचारे की जो बड़ी दौलत बख़्शी थी उसकी याददिहानी क़ुरआन में की गई है और उसे अपनी नेमत बताया गया है—

"और अल्लाह की उस नेमत को याद करो कि जब तुम आपस में दुश्मन थे, तो उसने तुम्हारे दिलों को जोड़ दिया और तुम उसकी मेहरबानी से भाई-भाई बन गए।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-103)

फिर सूरा-8 अनफ़ाल में प्यारे नबी (सल्ल॰) को मुख़ातब करते हुए कहा

गया है कि ज़मीन की सारी दौलत ख़र्च करने के बाद भी यह आपके बस की बात न थी कि आप (सल्ल०) मुसलमानों के दिलों को इस तरह मुहब्बत और प्यार के रिश्ते में जोड़ देते। यह सिर्फ़ अल्लाह की क़ुदरत है कि उसने ऐसा किया और वही ऐसा कर सकता है। उसने एक दीन दिया और उस दीन पर ईमान और उस दीन से मुहब्बत की तौफ़ीक़ दी और उसी का नतीजा है यह प्यार व मुहब्बत–

> "अगर तू जो कुछ ज़मीन में है सब-का-सब ख़र्च कर डालता तो भी उनके दिलों में मुहब्बत नहीं डाल सकता था। लेकिन अल्लाह ने उनके दरमियान मुहब्बत डाल दी।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-63)

किरदार की बुनियादी ख़ूबियाँ

आपसी ताल्लुक़ात का जो मेयार इस्लाम ने मुक़र्रर किया है उसे क़ायम और बनाए रखने के लिए अल्लाह और उसके पैग़म्बर ने हुक़ूक़ और ज़िम्मेदारियों का एक ज़ाब्ता भी मुक़र्रर करके दिया है। उस ज़ाब्ते पर अमल करके इन ताल्लुक़ात को आसानी के साथ उस मेयार पर पहुँचाया जा सकता है जो दीन चाहता है। लेकिन उस ज़ाब्ते की नीव कुछ बुनियादी बातों पर क़ायम है जिन्हें अगर इनसान अपने किरदार में अपनाए तो उन हुक़ूक़ और ज़िम्मेदारियों में से एक-एक चीज़ उन बुनियादी ख़ूबियों के लाज़िमी नतीजों के तौर पर ज़ाहिर होती चली जाएगी। या यूँ कहिए कि फिर ये ख़ूबियाँ आदमी के अन्दर से एक-एक हक़ को अदा करने और एक-एक ज़िम्मेदारी को पूरा करने के लिए तक़ाज़ा और माँग करेंगी। और फिर क़दम-क़दम पर नसीहत या तम्बीह की ज़रूरत न पड़ेगी। इन ख़ूबियों का ज़िक्र नीचे किया जा रहा है।

ख़ैरख़ाही

सबसे पहली और बुनियादी चीज़ ख़ैरख़ाही है।

ख़ैरख़ाही के लिए हदीसों में जो शब्द इस्तेमाल हुआ है वह 'नसीहत' है और यह शब्द अपने दामन में बड़े-बड़े मानी समेट लेता है। इसी लिए पैग़म्बर (सल्ल॰) ने यहाँ तक कहा—

> "दीन सरासर ख़ैरख़ाही है।" यह बात आप (सल्ल॰) ने तीन बार दोहराई। (हदीस : मुस्लिम)

फिर और ज़्यादा तशरीह के तौर पर उनके नाम गिनाए गए, जिनके साथ ख़ैरख़ाही का तक़ाज़ा है और उनमें आम मुसलमानों का भी ज़िक्र है। इस तरह एक बार नबी (सल्ल॰) ने अपने कुछ साथियों से आम मुसलमानों के लिए ख़ैरख़ाही भलाई और बेहतरी की बैअत की। इस पहलू से इस शब्द का मतलब यह है कि ताल्लुक़ में खोट न हो। दूसरे शब्दों में हम इस ख़ूबी को इस तरह निश्चित कर सकते हैं कि आदमी के ऊपर हमेशा अपने भाई

की भलाई और बेहतरी की फ़िक्र ही ग़ालिब (छाई) रहे। उसी की बेहतरी के लिए फ़िक्रमन्द और सरगर्म हो और हर पहलू से उसको फ़ायदा पहुँचाने की कोशिश करे। उसका कोई नुक़सान और कोई तकलीफ़ गवारा न हो और दुनिया की या दीन की जिस पहलू से उसको मदद पहुँचा सकता हो उसकी पूरी कोशिश करे। इस ख़ैरख़ाही का अस्ल मेयार यह है कि वह अपने भाई के लिए वही कुछ पसन्द करे जो अपने लिए पसन्द करता है। इसलिए कि आदमी खुद कभी अपने-आपका और अपने नफ़्स का बुरा नहीं चाह सकता, बल्कि वह अपने लिए ज़्यादा-से-ज़्यादा नफ़ा, भलाई और बेहतरी के लिए कोशिश में रहता है। वह अपने नफ़्स के हक़ों (अधिकारों) में कमी गवारा नहीं कर सकता। वह उसके फ़ायदे के लिए माल और वक़्त ख़र्च करने में कोताही नहीं कर सकता। वह उसका बुरा नहीं चाह सकता। वह उसकी बेइज़्ज़ती गवारा नहीं कर सकता। और वह उसके लिए ज़्यादा-से-ज़्यादा रिआयत (छूट) का तालिब होता है। बस ख़ैरख़ाही के मानी यही हैं कि आदमी के किरदार में ये ख़ूबियाँ पैदा हो जाएँ और उसका रवैया इस ढंग पर परवान चढ़े कि वह अपने भाई के लिए वही कुछ पसन्द करे जो अपने लिए करता है। ईमानवाले के किरदार की इस ख़ूबी को ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल.) ने ईमान की एक लाज़िमी शर्त ठहराया है और कहा है—

> "उस हस्ती की क़सम जिसके हाथ में मेरी जान है! कोई बन्दा ईमानवाला नहीं होता जब तक कि वह अपने भाई के लिए वही कुछ पसन्द न करे जो अपने लिए करता है।" (हदीस : अहमद)

फिर इसी तरह एक मुसलमान के दूसरे मुसलमान पर जो कुछ अहम हुक़ूक़ बताए गए हैं, उनमें इस ख़ैरख़ाही को इस तरह बयान किया गया है—

> "वह अपने भाई की ख़ैरख़ाही करे चाहे वह ग़ायब हो या मौजूद हो।" (हदीस : तिरमिज़ी)

एक दूसरी हदीस में भी नबी (सल्ल.) ने यही बात इस तरह कही है कि मुसलमानों के मुसलमान पर छह हक़ हैं। उनमें से एक यह है—

> "वह उसके लिए वही पसन्द करे जो अपने लिए करता है।"
> (हदीस : तिरमिज़ी)

आगे चलकर हम देखेंगे कि ख़ैरख़ाही की यह ख़ूबी अपने दामन में कितने हुक़ूक़ और हिक्मतें समेट लेती है जो सीधे-सीधे उसके लाज़िमी तक़ाज़े के तौर पर वुजूद में आती हैं।

ईसार और क़ुरबानी

जब एक मुसलमान अपने भाई के लिए न सिर्फ़ यह कि वही पसन्द करता है जो अपने ख़ुद के लिए, बल्कि उसको अपने-आप पर तरजीह देता है तो किरदार की यह ख़ूबी ईसार और क़ुरबानी है, और यह दूसरी बुनियादी ख़ूबी है।

ईसार अरबी भाषा का शब्द है जो 'इस्र' से निकलता है और इसके मानी क़दम रखने और तरजीह देने के हैं। यानी मुसलमान अपने भाई की भलाई और बेहतरी को अपने-आपकी भलाई और बेहतरी पर तरजीह दे। अपनी ज़रूरत को बाद में पूरी करे, दूसरे की ज़रूरत पहले पूरी करे। ख़ुद तकलीफ़ उठाए, दूसरों को आराम पहुँचाए। ख़ुद भूखा रहे, दूसरे का पेट भर दे। अपनी तबियत और मिज़ाज पर नागवारियाँ झेल ले, लेकिन अपने भाई के दिल पर जहाँ तक हो सके किसी नागवारी का मैल न आने दे।

यह ख़ूबी एक बुलन्द अख़लाक़ी ख़ूबी है और हर शख़्स से इसका तक़ाज़ा नहीं किया जा सकता। इसलिए कि इसकी बुनियाद पर हुक़ूक़ तो तय नहीं किए गए, लेकिन ख़ुद इसकी और इसकी बुनियाद पर अनगिनत अख़लाक़ी ज़िम्मेदारियों की ताकीद की गई है।

यह ईसार और क़ुरबानी सबसे पहले ज़रूरतों के दायरे में होनी चाहिए। फिर सुख-चैन और आराम के दायरे में और फिर मिज़ाज के तक़ाज़ों के दायरे में। यह आख़िरी चीज़ बहुत अहम है। सारे इनसान अलग-अलग मिज़ाज के होते हैं और इस तरह उनके तक़ाज़े भी अलग-अलग होते हैं, और अगर हर इनसान अपने मिज़ाज के तक़ाज़ों पर अड़ जाए तो समाज दरहम-बरहम हो जाए, लेकिन अगर वह दूसरे के ज़ौक़, पसन्द और दिलचस्पी को तरजीह (प्राथमिकता) देना सीख जाए तो फिर बहुत ही मीठे और सच्चे ताल्लुक़ात वुजूद में आते हैं।

फिर इस ईसार और क़ुरबानी का ऊँचा दर्जा यह है कि आदमी ख़ुद तंगी और तकलीफ़ की हालत में हो और फिर भी अपने भाई की ज़रूरतों को अपनी ज़रूरतों पर तरजीह दे। अल्लाह के नबी (सल्ल०) के साथियों (रज़ि०) की ज़िन्दगी इन सच्ची घटनाओं से भरी पड़ी है और क़ुरआन मजीद ने उनकी इस ख़ूबी की तारीफ़ की है—

"और अपने नफ़्स (मन) पर (दूसरों को) तरजीह देते हैं, भले ही उनपर तंगी क्यों न हो।" (क़ुरआन, सूरा-59 हश्र, आयत-9)

अनसार ने जिस तरह अपने मुहाजिर भाइयों का स्वागत किया और उनको अपने बीच जगह दी, यह ईसार और क़ुरबानी की अछूती मिसाल है। एक क़िस्सा हज़रत अबू-तलहा अनसारी (रज़ि०) का है जो इस आयत के उतरने की वजह के तौर पर बयान किया जाता है, और जिसमें उसका बेहतरीन नमूना पाया जाता है।

"एक दिन एक आदमी अल्लाह के नबी (सल्ल०) के पास भूखा आया। नबी (सल्ल०) के घर में कुछ नहीं था। आप (सल्ल०) ने कहा, जो आदमी इसको आज की रात मेहमान बनाएगा, अल्लाह उसपर रहम करेगा। हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) उसको अपने साथ घर ले गए, लेकिन घर जाकर बीवी से मालूम हुआ कि इतना ही खाने को है कि मेहमान का पेट भर सके। बोले बच्चों को सुला दो और चिराग़ को बुझा दो। हम दोनों रात भर भूखे रहेंगे। हाँ, मेहमान पर यह ज़ाहिर करेंगे कि हम भी खा रहे हैं। इसलिए उन्होंने ऐसा ही किया। सुबह को नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए तो आप (सल्ल०) ने कहा कि अल्लाह तुम्हारे इस अच्छे सुलूक से बहुत ख़ुश हुआ और यह आयत सुनाई।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

यह माल की तंगी में ईसार और क़ुरबानी का क़िस्सा था, लेकिन इससे भी ज़्यादा अछूता क़िस्सा जिहाद का है जो ईसार व क़ुरबानी की एक आख़िरी शक्ल है। जब एक ज़ख़्मी के पास लड़ाई के मैदान में पानी पहुँचाया गया तो पास से कराहने की आवाज़ आई, उन्होंने कहा कि पहले उनके पास ले जाओ। जब उनके पास पहुँचे तो फिर यही घटना पेश आई और उन्होंने

भी मरते वक़्त अपने साथी को अपने ऊपर तरजीह दी, और इसी तरह छठे आदमी तक नौबत आई और हर एक-दूसरे को अपने ऊपर तरजीह देता रहा। जब छठे के पास पहुँचे तो वह ख़ुदा को प्यारे हो चुके थे और जब पहलों के पास आए तो सब अल्लाह को प्यारे हो चुके थे। अल्लाह उन सबसे राज़ी हो।

इस तरह ईसार और क़ुरबानी के मानी ये हैं कि आदमी अपने लिए कमतर चीज़ पर राज़ी हो जाए और अपने साथी को बेहतर चीज़ दे। एक बार अल्लाह के नबी (सल्ल॰) एक जंगल में जा रहे थे। आप (सल्ल॰) ने दो मिसवाकें (दातूनें) काटीं। एक सीधी थी और एक टेढ़ी। आप (सल्ल॰) के साथ एक सहाबी (रज़ि॰) थे। नबी (सल्ल॰) ने सीधी मिसवाक उन्हें दे दी और टेढ़ी ख़ुद रख ली। उन्होंने कहा कि ऐ अल्लाह के नबी! यह बेहतर है और आपके लिए अच्छी है। नबी (सल्ल॰) ने कहा कि जो कोई आदमी किसी के साथ एक घड़ी भी रहता है तो उससे क़ियामत के दिन सवाल किया जाएगा कि उसने साथी के हक़ का ख़याल रखा या नहीं रखा (कीमिया-ए-सआदत)। यह इशारा है इस बात की तरफ़ कि ईसार भी सोहबत और संगत का एक हक़ है।

सीरत और किरदार की दो अहम बुनियादी ख़ूबियाँ जिनको अगर ईमानवाला अपना ले तो न सिर्फ़ यह कि ताल्लुक़ात की ख़राबी को कहीं सिर उठाने का मौक़ा न मिल सकेगा, बल्कि ये बहुत ही मीठे हो जाएँगे, ये अद्ल (इनसाफ़) और एहसान हैं जिनके बारे में क़ुरआन मजीद में कहा गया—

"अल्लाह अद्ल और एहसान पर क़ायम रहने का हुक्म देता है।"

(क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, आयत-90)

अद्ल (न्याय) का तसव्वुर दो अटल हक़ीक़तों से मिलकर बना है। एक यह कि लोगों के बीच हुक़ूक़ में तवाज़ुन (सन्तुलन) और तनासुब क़ायम हो और दूसरे यह कि हर एक को उसका हक़ बेलाग तरीक़े से दिया जाए। और 'अद्ल के' हुक्म का तक़ाज़ा यह है कि हर आदमी को उसके अख़लाक़ी, समाजी, मुआशी, क़ानूनी, सियासी और तमद्दुनी (सांस्कृतिक) हुक़ूक़ पूरी

ईमानदारी के साथ अदा किए जाएँ। यानी एक मुसलमान अपने भाई के वे सारे हक़ अदा करे जो शरीअत ने लागू किए हैं। अपने मामलों को इस ढंग पर तय करे जिस ढंग पर शरीअत चाहती है। सुलूक और बरताव इस तरह का हो जैसा कि शरीअत तक़ाज़ा करती है और बरताव में वही रवैया अपनाया जाए जिसका हुक्म शरीअत ने दिया है। इसलिए कि शरीअत ही वह निज़ाम है जिसमें अद्ल (न्याय) के सारे तक़ाज़े पूरे हुस्न व ख़ूबी के साथ ध्यान में रखे गए हैं। अल्लाह ने कहा—

"और हमने उनके साथ किताब और तराज़ू उतारी ताकि लोग इनसाफ़ को क़ायम रखें।" (क़ुरआन, सूरा-57 हदीद, आयत-25)

इसी तरह इसका तक़ाज़ा यह है कि अगर किसी से बुराई का बदला ले तो बस उतना ही ले जितनी बुराई की गई है। जो उससे आगे बढ़ा वह अद्ल (न्याय) की हद से आगे बढ़ गया।

अद्ल की और तशरीह जो उसके तसव्वुर को बिलकुल मुकम्मल कर देती है इस हदीस में है। नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"ग़ुस्से की हालत हो या नाराज़गी की, हर हालत में अद्ल (न्याय) की बात पर जमे रहो।" (हदीस : मिशकात)

अस्ल में बेहतरीन सीरत और किरदार की बुनियादी पहचान यह है कि आदमी के दिल की कैफ़ियत कुछ भी हो, लेकिन वह इनसाफ़ के रास्ते से बाल बराबर भी न हटे, और इसमें अस्ल चीज़ यह है कि आदमी के किरदार में इतनी ताक़त हो कि चाहे आदमी के दिल में अपने भाई की तरफ़ से ग़ुबार और मैल हो, लेकिन फिर भी वह अपने मामलों, बरताव और रवैये को शरीअत के तक़ाज़ों से हटने न दे। इस अद्ल के बाद अगली चीज़ एहसान है जो अद्ल से आगे की एक चीज़ है।

एहसान

एहसान की अहमियत आपसी ताल्लुक़ात में अद्ल (न्याय) से भी ज़्यादा है। अद्ल अगर ताल्लुक़ात की बुनियाद है तो एहसान उसका जमाल (ख़ूबसूरती) और कमाल है। अद्ल अगर ताल्लुक़ात को नागवारियों और

कड़वाहटों से बचाता है तो एहसान इसमें मिठास और ख़ुशगवारियाँ पैदा करता है। कोई ताल्लुक़ सिर्फ़ इस बुनियाद पर क़ायम नहीं रह सकता कि हर पक्ष नाप-तौलकर देखता रहे और अपने वे हक़ जिनका हासिल कर लेना वाजिब है उनमें किसी तरह की कमी और दूसरों के जो हक़ अदा करना वाजिब है उनमें किसी तरह की बढ़ौत्तरी गवारा न करे। ऐसे एक खरे ताल्लुक़ में कशमकश तो न होगी, मगर मुहब्बत, शुक्रगुज़ारी, कुशादा-दिली, ईसार, और अख़लाक़ व ख़ैरख़ाही की नेमतों से वह महरूम रहेगा, जो अस्ल में ज़िन्दगी में आनन्द और मिठास पैदा करनेवाली हैं। ये नेमतें एहसान से हासिल होंगी जिससे मुराद है अच्छा बरताव, उदारता भरा मामला, हमदर्दी भरा रवैया, कुशादा-दिली, अच्छा आचरण, दरगुज़र और माफ़ कर देना, एक-दूसरे का ख़याल रखना, एक-दूसरे का पास-लिहाज़, दूसरे को उसके हक़ से कुछ ज़्यादा देना और ख़ुद अपने हक़ से कुछ कम पर ही राज़ी हो जाना।

इस एहसान के तसव्वुर को भी नौ बातोंवाली हदीस की तीन बातें मुकम्मल करती हैं—

> "जो मुझसे कटे, मैं उससे जुड़ूँ और जो मुझको (हक़ से) महरूम (वंचित) करे, मैं उसे (उसका हक़) दूँ और जो मेरे ऊपर ज़ुल्म करे, मैं उसको माफ़ कर दूँ।" (हदीस : मिशकात)

यानी किरदार की यह ख़ूबी इसका तक़ाज़ा करती है कि न सिर्फ़ यह कि आदमी अपने भाई को भलाई का बदला उससे ज़्यादा भलाई से दे, बल्कि यह भी कि अगर वह बुराई करे तो उसका जवाब भी भलाई से दे। क़ुरआन में है—

> "और बुराई को भलाई के ज़रिए से दफ़ा करते हैं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-13 रअद, आयत-22)

इन चार ख़ूबियों के बाद पाँचवीं चीज़ वह है जिसके लिए मैं रहमत का शब्द इस्तेमाल करूँगा, लेकिन इसके लिए न जाने कितने शब्द इस्तेमाल किए गए हैं।

रहमत

रहमत (करुणा) का शब्द मैंने इसलिए इस्तेमाल किया है कि ख़ुद

अल्लाह ने मुसलमानों के आपसी ताल्लुक़ात की तस्वीर खींचने के लिए इस शब्द को अपनाया है और यह चीज़ इसके व्यापक अर्थों की तरफ़ इशारा करती है–

"मुहम्मद अल्लाह के पैग़म्बर हैं और जो लोग उनके साथ हैं सत्य के इनकारियों पर सख़्त हैं और आपस में सरापा रहमत हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-48 फ़तूह, आयत-29)

इस ख़ूबी को ठीक तौर पर समझने के लिए हम इसको दिल की नरमी और कोमलता का नाम दे सकते हैं जिसके नतीजे में आदमी का रवैया अपने भाई के लिए इन्तिहाई मुहब्बत, गहरे लगाव, गर्मजोशी, मेहरबानी और प्यार का मज़हर हो जाता है। उसके भाई को उससे ज़र्रा बराबर भी कोई तकलीफ़ या ठेस पहुँचने का तसव्वुर भी उसके लिए दर्दनाक होता है। यह रहमत ही की ख़ूबी है जो आदमी को सबका प्यारा बनाती है और इनसानों को उसकी तरफ़ परवानों की तरह खींचती है। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की अहम ख़ूबियों में से एक ख़ूबी यही है जिसका ज़िक्र क़ुरआन ने किया है और दावत व तरबियत के सिलसिलें में इसकी कई मिसाल पेश की गई हैं–

"बेशक तुम्हारे पास एक पैग़म्बर आया है जो ख़ुद तुमही में से है। तुमको कोई तकलीफ़ पहुँचे तो उसको नागवार होती है, तुम्हारी भलाई की वह लालसा रखता है और ईमानवालों के लिए सरापा मेहरबान और रहमदिल है।" (क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-128)

और सूरा-3 आले-इमरान में बताया गया है कि अगर आपका दिल नर्म न होता तो लोग कभी आपके पास जमा न होते, और यह दिल की नरमी अल्लाह की रहमत है। कहा गया–

"अल्लाह की रहमत से तुम उनके लिए नर्म दिल हो। अगर कहीं सख़्त-दिल होते तो ये तुम्हारे पास से भाग खड़े होते।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-159)

ईमान का नतीजा मुहब्बत है और मुहब्बत सख़्त-दिली के साथ जमा नहीं हो सकती। इसी लिए एक सच्चा ईमानवाला जो सरापा मुहब्बत होता

है, सरापा नरमी भी होता है। वरना उसके लिए ईमान में कोई भलाई नहीं। इस हक़ीक़त पर अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने यूँ रौशनी डाली है—

"सच्चा ईमानवाला मुहब्बत व प्यार का पुतला होता है, और जो न मुहब्बत करता है और न उससे मुहब्बत की जाती है उसमें कोई भलाई नहीं है।" (हदीस : बैहक़ी)

और इसलिए यह कहा गया—

"जो नरमी से महरूम किया गया वह भलाई से महरूम कर दिया गया।" (हदीस : मुस्लिम, मिशकात)

इस बात की और अधिक तशरीह प्यारे नबी (सल्ल॰) ने इस तरह की—

"जिस आदमी को नरमी से उसका हिस्सा दिया गया उसको दुनिया और आख़िरत की भलाई में से उसका हिस्सा दे दिया गया।"

(हदीस : अहमद)

नबी (सल्ल॰) ने एक बार तीन जन्नतियों में से एक आदमी को गिनाया जो अपने रिश्तेदारों और हर मुसलमान के लिए रहीम (कृपालु) और नर्म दिल है। (हदीस : मुस्लिम)

यह उस शख़्स के लिए रहमत से महरूम (वंचित) होना और बदक़िस्मती है जो ज़मीन पर बन्दों पर रहम नहीं करता, वह अल्लाह की रहमत से महरूम हो जाता है और जो ज़मीन पर अल्लाह के बन्दों पर रहम करता है उसके लिए अल्लाह की रहमत वाजिब हो जाती है। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"रहमत किसी से छीनी नहीं जाती, मगर उससे जो बद्बख़्त हो।"
(हदीस : अहमद, तिरमिज़ी, मिशकात)

पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जो रहम करनेवाले हैं रहमान उनपर रहम करता है, तुम ज़मीनवालों पर रहम करो ताकि आसमानवाला तुमपर रहम करे।"
(हदीस : अबू-दाऊद, तिरमिज़ी, मिशकात)

इस नरमी और रहमत के जो दो अलग-अलग पहलू छोटों और बड़ों के साथ पेश आते हैं, यानी शफ़क़त व मुहब्बत और इज़्ज़त, इसका ज़िक्र नबी (सल्ल॰) ने इस तरह किया है—

"जो हमारे छोटों पर रहम न करे और हमारे बड़ों की इज़्ज़त न करे वह हममें से नहीं।" (हदीस : अबू-दाऊद, तिरमिज़ी, मिशकात)

एक मुसलमान अपने भाई के साथ ताल्लुक़ात में सरापा नर्म होता है और अपने मामलों में इस बात की कोशिश करता है कि हर मुमकिन तरीक़े से उसके दिल को ख़ुश रखे और उसको तकलीफ़ न होने दे और उसकी हर जाइज़ माँग पूरी कर दे। इस बात को नबी (सल्ल॰) ने एक मिसाल से यूँ समझाया है—

"ईमानवाले सहनशील और नर्मदिल होते हैं, उस ऊँट की तरह जिसकी नाक में नकेल पड़ी हो। अगर खींचा जाए तो खिँचता चला जाए और पत्थर पर बिठाया जाए तो पत्थर पर बैठ जाए।"

(हदीस : तिरमिज़ी, मिशकात)

क़ुरआन मजीद ने बहुत ही थोड़े शब्दों में इस पूरी कैफ़ियत को यूँ बयान किया है—

"वे ईमानवालों के लिए नर्म होते हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-54)

अस्ल में यह रहमत सीरत और किरदार की वह ख़ूबी है जो ताल्लुक़ात में एक नई जान डाल देती है और उसके हुस्नो-जमाल को मुकम्मल करती है और एक शख़्स जो एक बार इस रहमत की मिठास को चख लेता है फिर उसका दिल उस ताल्लुक़ को तोड़ने के लिए बड़ी मुशकिल से राज़ी होता है जिसके ज़रिए से उसको यह नेमत मिलती है।

अफ़्व (माफ़ कर देना)

अफ़्व का मतलब माफ़ कर देना है, लेकिन इस मतलब में वे बहुत सारी चीज़ें शामिल हैं जो अलग-अलग भी गिनी जाती हैं। लेकिन चूँकि उनका इस

सिफ़त से गहरा ताल्लुक़ है, इसलिए हमने उन्हें इसके तहत शामिल कर दिया है। मिसाल के तौर पर गुस्से को पी जाना, सब्र, नरमी, सहन और बरदाश्त वग़ैरा।

जब दो आदमियों के ताल्लुक़ात बनेंगे तो यह एक फ़ितरी (स्वाभाविक) बात है कि हर एक की तरफ़ से बहुत-से ऐसे काम होंगे जिनकी वजह से दूसरों को नागवारी, तल्ख़ी, तकलीफ़ और दुख होगा, जिनपर उसे गुस्सा आएगा और जिनमें से कुछ पर उसे क़ानूनी तौर पर बदला लेने का हक़ भी होगा। एक प्यार व मुहब्बत का ताल्लुक़ अपनी मज़बूती और पायदारी के लिए इस बात का तक़ाज़ा करता है कि ऐसे सभी मौक़ों पर मुहब्बत ग़ालिब आए और एक भाई में इतनी दिल की कुशादगी हो कि वह अपने गुस्से को पी जाए और बदला लेने की ताक़त होने के बावजूद बदला न ले और इस तरह माफ़ी के रवैये पर कारबन्द हो। नबी (सल्ल॰) की यह ख़ास आदत थी और अल्लाह ने इसके लिए आप (सल्ल॰) को बहुत-सी जगहों पर नसीहत की है। फ़रमाया—

"माफ़ करो और उनसे दरगुज़र करो और उनके लिए माफ़ी की दुआ करो।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-159)

और मुसलमानों को परहेज़गारी की ख़ूबियाँ बताते हुए यह भी कहा—

"...जो अपने गुस्से को पी जाते हैं और दूसरों के क़ुसूर माफ़ कर देते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-134)

जब आदमी को कोई तकलीफ़ पहुँचे या कोई नुक़सान हो तो सबसे पहले गुस्सा उसके दिल-दिमाग़ पर क़ाबू पाने की कोशिश करता है और अगर गुस्सा दिल-दिमाग़ पर क़ाबू पा ले तो फिर माफ़ करना तो दरकिनार आदमी ऐसी-ऐसी हरकतें कर बैठता है कि आगे के लिए ख़ुशगवार ताल्लुक़ात की उम्मीद बिलकुल ही टूट जाती है। इसलिए सबसे पहले आदमी को अपना गुस्सा पी जाने की फ़िक्र करनी चाहिए। तभी वह ठंडे दिल से मामले पर सोच-विचार कर सकेगा। और फिर माफ़ करने की पॉलिसी अपनाए भी न तो कम-से-कम इनसाफ़ की हद से आगे न बढ़ेगा। अल्लाह

के पैग़म्बर (सल्ल॰) के विभिन्न फ़रमानों में इसके ख़तरों से आगाह करते हुए इसको दबाने की तरग़ीब (प्रेरणा) दी गई है। कहा—

"बेशक गुस्सा ईमान को इस तरह ख़राब कर डालता है जिस तरह 'एलवा' शहद को।" (हदीस : बैहक़ी, मिशकात)

"बन्दा कोई घूँट नहीं पीता जो अल्लाह के नज़दीक उस ग़ुस्से के घूँट से ज़्यादा बेहतर हो जो वह ख़ुदा की ख़ुशनूदी की ख़ातिर पी जाता है।" (हदीस : अहमद, मिशकात)

इसी तरह नबी (सल्ल॰) ने सब्र की तालीम दी और यह बताया कि सबसे बेहतर रवैया यह है कि आदमी दुखों-तकलीफ़ों पर सब्र करे और मिल-जुलकर रहे, बजाय इसके कि ताल्लुक़ (सम्बन्ध) तोड़ ले। नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"वह मुसलमान जो लोगों से मिला-जुला रहे और उनके तकलीफ़ पहुँचाने पर सब्र करे उससे बेहतर है जो मिलना-जुलना छोड़ दे और दुखों और तकलीफ़ों पर सब्र न करे।"
(हदीस : तिरमिज़ी, इब्ने-माजा, मिशकात)

एक बार हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) को नसीहत करते हुए नबी (सल्ल॰) ने बहुत-सी और बातों के साथ-साथ यह भी कहा—

"जिस बन्दे पर ज़ुल्म किया जाए और वह सिर्फ़ अल्लाह के लिए चुप रहे तो अल्लाह उसकी ज़बरदस्त मदद करता है।"
(हदीस : बैहक़ी)

सब्र से आगे का मक़ाम यह है कि आदमी अपने भाई को ख़ुश-दिली के साथ माफ़ कर दे इसके बावजूद कि वह बदला लेने की पूरी ताक़त रखता हो। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने अल्लाह से पूछा कि बन्दों में कौन तुझे सबसे प्यारा है, तो अल्लाह ने फ़रमाया—

"वह आदमी जो बदला लेने की पूरी ताक़त रखने के बावजूद माफ़ कर दे।" (हदीस : बैहक़ी)

और इसी तरह जो आदमी अपने भाई की मजबूरी क़बूल न करे उसको यह चेतावनी दी गई। कहा गया—

"जिसने अपने भाई से अपने क़ुसूर का उज़्र किया और उसने उसको मजबूर न समझा या उसके उज़्र को क़बूल न किया तो उसपर उतना गुनाह हुआ जितना (एक नाजाइज़) टैक्स वुसूल करनेवाले पर।" (हदीस : बैहक़ी, मिशकात)

और आख़िरत (परलोक) में भी ऐसे आदमी के लिए बेहतरीन बदला है इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"जिसने ज़ब्त (बरदाश्त) कर लिया, इस हाल में कि वह उसे पूरा करने की ताक़त रखता था, क़ियामत के दिन मेहरबान ख़ुदा उसे सारी मख़लूक़ के सामने बुलाएगा और जिस हूर को चाहे उसे चुनने की छूट दे देगा।" (हदीस : अबू-दाऊद, मिशकात)

जो दुनिया में माफ़ करेंगे अल्लाह उनकी ख़ताएँ माफ़ कर देगा। अल्लाह का फ़रमान है—

"चाहिए कि वे माफ़ी और दरगुज़र से काम लें। क्या तुम इसे पसन्द नहीं करते कि अल्लाह तुम्हें माफ़ कर दे। अल्लाह बड़ा माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।"

(क़ुरआन, सूरा-24 नूर, आयत-22)

बुराई के बराबर बुराई का बदला लिया जा सकता है, लेकिन जो माफ़ कर दे तो उसका बदला ख़ास अल्लाह के ज़िम्मे है—

"बुराई का बदला उतनी ही बुराई है, तो जिसने माफ़ कर दिया और आपस में सुलह की उसका बदला अल्लाह के ज़िम्मे है और वह ज़ुल्म करनेवालों को पसन्द नहीं करता।"

(क़ुरआन, सूरा-42 शूरा, आयत-40)

बदला न लेने और माफ़ कर देने की यह ख़ूबी पैदा करना कोई आसान काम नहीं, बल्कि बड़ी हिम्मत और हौसले का काम है। अल्लाह ने कहा—

"और जिसने सब्र किया और माफ़ कर दिया तो यह बड़ी हिम्मत

का काम है।"   (क़ुरआन, सूरा-42 शूरा, आयत-42)

लेकिन यही वह चीज़ है जो ताल्लुक़ात में बड़ी बुलन्दी और पाकीज़गी पैदा कर देती है। और इसलिए यह एक बहुत ही अहम ख़ूबी है।

दो और ख़ूबियों का ज़िक्र भी यहाँ ज़रूरी मालूम होता है। पहली एक-दूसरे पर भरोसा और दूसरी, क़द्रो-क़ीमत का एहसास।

भरोसा

एक-दूसरे पर भरोसे का पूरा-पूरा तसव्वुर 'विलायत' (सरपरस्ती) का वह लफ़्ज़ अपने अन्दर समेट लेता है जो क़ुरआन मजीद ने मुसलमानों के आपसी ताल्लुक़ात की तशरीह के लिए इस्तेमाल किया है। अस्ल में वली (सरपरस्त) कहते ही उसको हैं जो पूरे तौर पर भरोसेमन्द हो, जिसको आदमी अपने सारे राज़ (भेद) और मामलों को पूरे इत्मीनान के साथ उसके हवाले कर सके। मुहब्बत और भाईचारे के इस ताल्लुक़ का तक़ाज़ा होता है कि आदमी अपने साथियों पर भरोसा करे और उनको अपनी ज़िन्दगी के मामलों में बराबर का साझीदार समझे।

क़द्रो-क़ीमत का एहसास

यह आख़िरी चीज़ है और इसका मक़सद सिर्फ़ यह है कि आदमी इस ताल्लुक़ की अहमियत और हैसियत को इतना जान ले कि उसका दिल इसकी सही क़द्रो-क़ीमत महसूस कर सके। तभी यह मुमकिन हो सकेगा कि आदमी किसी क़ीमत पर भी उस ताल्लुक़ का टूटना गवारा न करे।

इन बुनियादी उसूलों और ख़ूबियों की रौशनी में अल्लाह और उसके पैग़म्बर (सल्ल॰) ने हमें तफ़्सील के साथ हिदायतें दी हैं, ताकि ताल्लुक़ात को मतलूबा मेयार पर ढाला जाए। कुछ चीज़ें मनफ़ी (नकारात्मक) हैसियत रखती हैं जो ताल्लुक़ात को ख़राब होने से बचाती हैं, यानी जिनसे रोका गया है। और कुछ मुसबत (सकारात्मक), जो उसको और ज़्यादा मज़बूती और मुहब्बत बख़्शती हैं। यानी जिन्हें करना ज़रूरी है।

हक़ मारना

सबसे अहम और पहली चीज़ जिससे रोका गया है वह है किसी का हक़

या अधिकार हड़प लेना। हर इनसान इस दुनिया में कुछ हुक़ूक़ (अधिकारों) का मालिक होता है। ये हक़ और अधिकार कायनात की उन चीज़ों में भी होते हैं जिनको इनसान अपने इस्तेमाल में भी लाता है और इनसानों पर भी उसके कुछ हक़ होते हैं जिनसे वह अपने सम्बन्ध बनाता है। एक मुसलमान का फ़र्ज़ है कि वह इस बात की सख़्ती से निगरानी करे कि उसके भाई के इन दो तरह के हक़ों में से किसी हक़ को मार लेने का जुर्म उससे न हो। माल-दौलत, ज़मीन या भौतिक लाभों (दुनियावी फ़ायदों) में जो हक़ उसके भाई का हो वह ख़ुद न हासिल करे और उसकी जान-माल, इज़्ज़त-आबरू और दीन (धर्म) की तरफ़ से जो हक़ उसपर लागू होते हैं उनमें से कोई हक़ अदा होने से न रह जाए। यही वे हक़ हैं जिनके बारे में क़ुरआन ने बहुत ही ज़्यादा तफ़सील के साथ बताया है। विरासत, निकाह, तलाक़ और दूसरे मामलों में से हर एक के मामले में अल्लाह ने अपनी हदें लगाकर उन हक़ों को मारने से रोका है। इन हक़ों की और ज़्यादा तफ़सील हदीसों में बयान हुई हैं। फिर जहाँ-जहाँ ये हदें बयान हुई हैं, वहाँ बयान का सख़्त अन्दाज़ अपनाकर हक़ों के सिलसिले में ख़ुदा से डरने की नसीहत की है और उनको तोड़ने के बुरे अंजाम से आगाह किया है—

> "ये अल्लाह की हदें हैं, तो इनसे आगे न बढ़ो और जो कोई अल्लाह की हदों से आगे बढ़े वही ज़ालिम (अत्याचारी) हैं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-229)

> "ये अल्लाह की हदें हैं, जो अल्लाह और उसके पैग़म्बर की फ़रमाँबरदारी करे तो अल्लाह उसे उन बाग़ों में दाख़िल करेगा, जिनके नीचे नहरें बहती हैं और वह उसमें हमेशा रहेगा। यही सबसे बड़ी कामयाबी है। और जो अल्लाह और उसके रसूल की नाफ़रमानी करे और उसकी हदों को तोड़े तो अल्लाह उसे आग में दाख़िल करेगा जहाँ वह हमेशा रहेगा और उसके लिए रुस्वा कर देनेवाला अज़ाब है।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयतें-13, 14)

पैग़म्बर (सल्ल॰) की तरफ़ से मुसलमानों के सामने यह बात इस तरह बयान की गई है—

"बेशक अल्लाह ने आग को वाजिब क़रार दिया और जन्नत हराम कर दी उसपर जिसने क़सम खाकर किसी मुसलमान का हक़ मारा।" सहाबा (रज़ि॰) में से किसी ने पूछा, अगरचे वह कोई मामूली-सी चीज़ हो। नबी (सल्ल॰) ने कहा, "हाँ अगरचे वह पीलू की एक बेकार और मामूली-सी टहनी ही क्यों न हो।"

(हदीस : बैहक़ी)

एक बार नबी (सल्ल॰) ने एक बड़े ही असरदार अन्दाज़ में इस बात को वाज़ेह करते हुए अपने सहाबा (रज़ि॰) से पूछा—

"जानते हो कि मुफ़लिस (मुहताज) कौन है?" सहाबा (रज़ि॰) ने आम मानी के लिहाज़ से कहा कि मुफ़लिस वह है जो धन-दौलत और पूँजी से ख़ाली हो। आप (सल्ल॰) ने कहा, "मेरी उम्मत में अस्ल मुफ़लिस वह है जो क़ियामत के दिन नमाज़, रोज़ा, ज़कात जैसे आमाल (कर्मों) का भंडार लाए और साथ ही ये आमाल भी लाए कि किसी को गाली दी, किसी पर तोहमत लगाई, किसी का माल खाया, किसी का ख़ून बहाया और किसी को मारा। फिर एक मज़लूम को उसकी नेकियाँ दी जाएँगी और दूसरे मज़लूम को उसकी नेकियाँ दी जाएँगी और यह फ़ैसला चुकाने से पहले अगर उसकी नेकियाँ ख़त्म हो जाएँगी तो फिर हक़दारों की बुराइयाँ लेकर उसपर डाल दी जाएँगी और फिर उसे आग में फेंक दिया जाएगा।"

(हदीस : मुस्लिम, मिशकात)

दुनिया में ताल्लुक़ात को ख़राबी से बचाने के लिए और आख़िरत के उस अज़ाब से बचने के लिए हक़ों का पूरी तरह अदा कर देना बहुत ज़रूरी है, और इसी लिए अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने ख़ास तौर पर नसीहत की है कि मौत से पहले अपने लोगों से अपनी ग़लतियाँ माफ़ करा लो।

हक़ों को अदा करने के सिलसिले में बुनियादी चीज़ यह है कि एक मुसलमान भाई का जिस्म (बदन) और आबरू उसके हाथ और ज़बान से महफ़ूज़ रहे। इसलिए नबी (सल्ल॰) ने इस चीज़ को एक बहुत लाज़मी

ख़ूबियों में शुमार किया है। नबी (सल्ल०) ने कहा–

"मुसलमान तो वह है जिसकी ज़बान और हाथ से तमाम मुसलमान महफ़ूज़ रहें।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, तिरमिज़ी)

जिस्म और जान की हिफ़ाज़त

हर इनसान के लिए सबसे प्यारे और क़ीमती उसके अपने जिस्म और जान होते हैं और वह किसी ऐसे को कभी अपना भाई नहीं समझता जो इस मामले में हद से आगे बढ़े। इसलिए अल्लाह ने उस नाहक़ ख़ून करने से बहुत ही सख़्त अन्दाज़ में रोका है–

"और जो कोई ईमानवाले को जान-बूझकर क़त्ल करे तो उसका बदला जहन्नम है। हमेशा उसमें रहेगा और उसपर अल्लाह का ग़ज़ब (प्रकोप) हो, और उसपर अल्लाह ने लानत की है और उसके लिए उसने बहुत बड़ा अज़ाब तैयार किया है।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-93)

आख़िरी हज के मौक़े पर बड़े ही असरदार अन्दाज़ में नबी (सल्ल०) ने मुसलमानों पर एक-दूसरे की जान, माल और आबरू को हराम क़रार दिया और फिर कहा–

"देखो, मेरे बाद कुफ़्र में मत पड़ जाना कि एक-दूसरे की गर्दन मारने लगो।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इसी तरह एक बार नबी (सल्ल०) ने कहा–

"मुसलमान को गाली देना गुनाह है और उससे लड़ना कुफ़्र।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

हाथ से ज़्यादा ज़बान का मामला ताल्लुक़ात में बड़ा नाज़ुक होता है। यह हज़ार रास्तों से फ़ितने पैदा करती है। और हर फ़ितना इतना ही पेचीदा कि उसका बचाव भी बड़ी मुशकिल से होता है। इसलिए सबसे ज़्यादा ज़रूरी है कि इसके फ़ितनों के आगे बंद बाँध दिया जाए। इसी लिए अल्लाह और उसके पैग़म्बर (सल्ल०) ने एक तरफ़ तो ज़बान के बारे में बड़ी तम्बीह और

ताकीद की और दूसरी तरफ़ ताल्लुक़ात के दायरे में वह एक-एक चीज़ जो ख़राबी और बिगाड़ का सबब बनती है, उसकी निशानदेही कर दी और उससे रोक-थाम की तदबीरें कीं।

क़ुरआन मजीद ने मुसलमानों को बताया—

"कोई बात उसने कही नहीं कि उसके पास एक निगराँ हाज़िर होता है।" (क़ुरआन, सूरा-50 क़ाफ़, आयत-18)

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने हज़रत मुआज़ (रज़ि॰) को बहुत-सी नसीहतें करते हुए आख़िर में अपनी ज़बान पकड़कर कहा—

"तेरे ऊपर लाज़िम है कि इसको रोके रखे।"

उन्होंने पूछा कि ऐ अल्लाह के नबी! क्या हम जो कुछ बोलते हैं उसके बारे में भी हम पकड़े जाएँगे? आप (सल्ल॰) ने कहा—

"तेरी माँ तुझको रोए ऐ मुआज़! ज़बान की कतरनों के अलावा और क्या चीज़ होगी जिसकी बिना पर लोग मुँह के बल या नथुनों के बल आग में गिरेंगे।" (हदीस : तिरमिज़ी, रियाज़ुस्सालिहीन)

सुफ़ियान-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि॰) ने सवाल किया कि अपने बारे में किस चीज़ से सबसे ज़्यादा डरूँ?

नबी (सल्ल॰) ने अपनी ज़बान पकड़ी और कहा, "इससे।"

बद-कलामी और बुरा-भला कहना

ज़बान का यह इस्तेमाल कि इनसान अपने भाई के मुँह पर बुरा-भला कहे या उससे सख़्ती के साथ बातचीत करे और उससे तानाज़नी व मलामत करे, बिलकुल नाजाइज़ है। इसी तरह बुरे नाम से पुकारना भी इसके तहत आता है, जिसके बारे में क़ुरआन मजीद ने कहा है—

"एक दूसरे की हँसी न उड़ाओ और न एक दूसरे को बुरे लक़बों के साथ पुकारो। ईमान लाने के बाद बुराई में नाम पैदा करना बहुत बुरा है।" (क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-11)

इसी तरह नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"कोई बुरा चाहनेवाला और कड़वी बात करनेवाला आदमी जन्नत में दाख़िल न होगा।" (हदीस : अबू-दाऊद, बैहक़ी)

और यह भी फ़रमाया—

"क़ियामत के दिन मेरे नज़दीक सबसे ज़्यादा नफ़रत के लायक़ और मुझसे सबसे ज़्यादा दूर बकवास करनेवाले, गुस्ताख़ और बदज़बान, बड़ाई जतानेवाले और इल्म (ज्ञान) के झूठे दावेदार और घमंडी होंगे।" (हदीस : तिरमिज़ी जवाहिरे-रिसालत)

और यह भी कहा—

"ईमानवाला न तो ताने देनेवाला होता है, न लानत करनेवाला, न अश्लील बातें बकनेवाला, न ज़बानदराज़।"

(हदीस : तिरमिज़ी, मिशकात)

अस्ल चीज़ यह है कि आदमी अपने भाई की इज़्ज़त पर कोई हमला न उसके सामने करे और न उसके पीछे।

ग़ीबत

एक दूसरा फ़ितना ग़ीबत है, और यह पहले से भी बढ़कर है, क्योंकि इसमें इनसान अपने भाई के सामने नहीं, बल्कि उसको पीठ-पीछे बुरा कहता है, जबकि वह अपने बचाव की ताक़त और क़ुदरत नहीं रखता। क़ुरआन मजीद ने ग़ीबत करने की मिसाल अपने मुर्दा भाई के गोश्त खाने से दी है—

"और न कोई किसी की ग़ीबत करे। क्या तुममें से कोई पसन्द करता है कि अपने मरे हुए भाई का गोश्त खाए। इससे तो तुम ज़रूर नफ़रत करोगे।" (क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-12)

अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल०) ने ग़ीबत की तारीफ़ (परिभाषा) करते हुए एक बार सहाबा (रज़ि०) से सवाल किया, "क्या तुम जानते हो कि ग़ीबत क्या है?" सहाबा (रज़ि०) ने जवाब में कहा, "अल्लाह और उसका पैग़म्बर ख़ूब जानते हैं।" नबी (सल्ल०) ने कहा—

"ग़ीबत यह है कि तुम अपने भाई का ज़िक्र इस तरह करो जो उसे

नापसन्द हो।" कहा गया, अगर वह बुराई मेरे भाई में मौजूद हो जिसका ज़िक्र किया गया है। नबी (सल्ल॰) ने कहा, "तूने अगर ऐसी बुराई की जो उसमें मौजूद है तो ग़ीबत की और अगर उसमें मौजूद नहीं है तो उसपर बुहतान लगाया।"

(हदीस : मुस्लिम, मिशकात)

मुसलमान भाई की इज़्ज़त इस बात की माँग करती है कि उसका भाई उसकी पीठ के पीछे उसको बुरे शब्दों से न याद करे।

चुग़लख़ोरी

ग़ीबत ही की एक ख़ास शक्ल चुग़लख़ोरी है। हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना है कि चुग़लख़ोर जन्नत में न जाएँगे।

नबी (सल्ल॰) ने अपने साथियों को ख़ास तौर पर नसीहत की—

"कोई आदमी किसी के बारे में कोई बात मुझे न पहुँचाए। इसलिए कि मैं इस बात को पसन्द करता हूँ कि जब तुम्हारे पास आऊँ तो हर एक की तरफ़ से मेरा सीना साफ़ हो।"

(हदीस : अबू-दाऊद, मिशकात)

ग़ीबत और चुग़लख़ोरी में ज़बान के अलावा हाथ, पैर और आँख के ज़रिए से बुराई करना भी आता है।

ग़ैरत दिलाना

बुराई की एक बड़ी ख़राब, बिगाड़ पैदा करनेवाली, दिलों में फूट डालने और नफ़रत पैदा करनेवाली चीज़ यह है कि मुसलमान अपने भाई को उसके मुँह पर या दूसरों के सामने उसके गुनाहों पर आर (ग़ैरत) दिलाकर शर्मिन्दा करे और इस तरह उसको रुसवा करे। इस हरकत से दिल फट जाते हैं, इसलिए कि इस तरह की रुसवाई कोई आदमी भी गवारा नहीं कर सकता। क़ुरआन मजीद ने कहा है—

"आपस में एक दूसरे पर इलज़ाम न लगाओ।"

(क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-11)

नबी (सल्ल०) ने कहा—

"जो आदमी अपने भाई को किसी गुनाह पर ग़ैरत दिलाए तो वह (ग़ैरत दिलानेवाला) नहीं मरेगा जब तक कि उससे यह गुनाह न हो जाए।" (हदीस : तिरमिज़ी)

हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) की एक रिवायत में, जिसमें उन्होंने मुसलमानों के कई हक़ गिनाए, यह भी फ़रमाया, "उन्हें किसी ऐब और गुनाह का निशाना बनाकर शर्मिन्दा और रुसवा न करो।"

(हदीस : तिरमिज़ी, मिशकात)

टोह में पड़ना

ऐब लगाकर शर्मिन्दा करने से पहले एक और बुराई आई है और वह यह है कि आदमी अपने भाई की ख़राबियों और कमियों की टोह लगाता फिरे, उनके बारे में खोज-कुरेद करे, इसलिए कि जिसके बारे में खोज-कुरेद की जाए उसे भी बुरा लगता है और जिसकी जानकारी में अपने भाई की बुराइयाँ आती हैं उसके दिल में गाँठ पड़ जाती है, और चूँकि टोह लेने के लिए इनसान कभी अच्छे ज़रिए इस्तेमाल नहीं करता, इसलिए अकसर इसकी सम्भावना बनी रहती है कि खोज-कुरेद करने के आधे-अधूरे ज़रिओं पर भरोसा करके अपने भाई के बारे में बुरी राय क़ायम कर ले और इस तरह बदगुमानी जैसा बुरा जुर्म कर बैठे। इसी लिए क़ुरआन ने बदगुमानी के बाद फ़ौरन मुसलमानों से कहा—

"और ऐब की टोह न लगाओ।"

(क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-12)

और प्यारे नबी (सल्ल०) ने भी इसकी हिदायत की है। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) बयान करते हैं कि आप (सल्ल०) ने कहा—

"मुसलमानों की ऐब-जोई के दरपे न रहो, इसलिए कि जो अपने किसी मुस्लिम भाई के छिपे ऐब और गुनाह के पीछे लगता है तो फिर अल्लाह उसके छिपे ऐब और गुनाह सबके सामने खोल देने पर तुल जाता है, और जिसके ऐब खोलने पर अल्लाह तुल जाए तो वह

उसको रुसवा और अपमानित करके ही छोड़ता है, अगरचे वह अपने घर के अन्दर घुसकर ही क्यों न बैठ रहे।"

(हदीस : तिरमिज़ी, मिशकात)

मज़ाक़ उड़ाना

ज़बान की बुराइयों में से एक बड़ी बुराई जो एक भाई को दूसरे भाई से अलग करती है वह मज़ाक़ उड़ाना है। यानी मज़ाक़ उड़ाना और ऐसा बुरा मज़ाक़ उड़ाना जिसमें उसकी ज़िल्लत और तौहीन शामिल हो, बल्कि यह एक सच्चाई है कि अकसर व बेशतर मज़ाक़ उड़ाना नतीजा होता है दूसरों को हक़ीर (तुच्छ) समझने का और अपने को बरतर (उच्च) समझने का। क़ुरआन मजीद ने इसपर इस तरह ख़बरदार किया है—

"ऐ ईमानवालो! न मर्द दूसरे मर्दों की हँसी उड़ाएँ, हो सकता है कि वे उनसे बेहतर हों और न औरतें दूसरी औरतों की हँसी उड़ाएँ, हो सकता है कि वे उनसे बेहतर हों।"

(क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-11)

जो आदमी अपने किसी भाई का मज़ाक़ उड़ाता है आख़िरत में उसके अंजाम की इबरतनाक सज़ा की तस्वीर नबी (सल्ल॰) ने खींची है—

"लोगों का मज़ाक़ उड़ानेवाले हर आदमी के लिए क़ियामत के दिन जन्नत का एक दरवाज़ा खोला जाएगा और उससे कहा जाएगा, 'तशरीफ़ लाइए'। वह ग़म और दुख के साथ आएगा और जैसे ही दरवाज़े तक पहुँचेगा उसपर दरवाज़ा बन्द कर दिया जाएगा। फिर उसपर दूसरा दरवाज़ा खोला जाएगा (और कहा जाएगा) 'आइए-आइए'। तो वह अपनी मुसीबतों और दुखों के साथ आएगा। ज्यों ही वह क़रीब पहुँचेगा दरवाज़ा बन्द कर दिया जाएगा। यह सिलसिला इसी तरह जारी रहेगा यहाँ तक कि जब किसी के लिए जन्नत का दरवाज़ा खोला जाएगा और कहा जाएगा 'आओ' तो वह मायूसी की वजह से वहाँ आने और दाख़िल होने की हिम्मत न करेगा।" (हदीस : बैहक़ी)

मज़ाक़ उड़ाने की एक शक्ल यह है कि दूसरे इनसान के ऐबों की नक़्ल उतारी जाए। एक बार हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने किसी की नक़्ल उतारी तो नबी (सल्ल॰) ने सख़्त नापसन्द किया और कहा—

"मैं किसी की नक़्ल उतारना पसन्द नहीं करता भले ही मुझे यह और यह दे दिया जाए। (यानी कोई भी दुनिया की नेमत)।"

(हदीस : तिरमिज़ी, मिशकात)

हक़ीर (तुच्छ) और नीच समझना

जो चीज़ दिल में मौजूद होती है और ज़ाहिरी सतह पर गाली देने, ग़ैरत दिलाने, चुग़लख़ोरी करने, ग़ीबत करने और मज़ाक़ उड़ाने की सूरत में ज़ाहिर होती है वह यह है कि आदमी अपने भाई को हक़ीर और तुच्छ समझता हो। इस कैफ़ियत के बाद आदमी की हिम्मत अपने भाई के हक़ में इस तरह की हरकतें करने की होती है वरना जिस आदमी को इनसान अपने से बेहतर जानता हो उससे कभी इस क़िस्म की हरकतें नहीं कर सकता। इसलिए क़ुरआन मजीद ने मज़ाक़ उड़ाने से रोकते वक़्त इसकी तरफ़ इशारा किया है कि अगर इनसान यह सोच ले कि उसका भाई उससे बेहतर हो सकता है तो वह कभी उसका मज़ाक़ न उड़ाए।

किसी मोमिन के दिल में ईमान और तक़वा के साथ किसी मोमिन भाई को नीच, कम और ज़लील समझना जमा नहीं हो सकते। इसलिए कि हर आदमी के इज़्ज़तदार और शरीफ़ होने का मेयार परहेज़गारी होता है, जिसका अस्ल फ़ैसला बहरहाल आख़िरत (परलोक) में अल्लाह के सामने होगा। इसी लिए दुनिया में अपने मुसलमान भाई को कम समझने के मानी तो ये हैं कि वह आदमी अभी ईमान की अस्ल क़द्रो-क़ीमत को ही नहीं समझा है।

अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने एक बड़ी गहरी और मानीख़ेज़ (अर्थपूर्ण) हदीस में यह बताते हुए कि तक़वा (ईशभय व परहेज़गारी) अस्ल में दिल में है, कहा कि एक आदमी की हलाकत के लिए यह बात काफ़ी है—

"एक आदमी के बुरे होने के लिए यही दलील काफ़ी है कि वह

अपने मुसलमान भाई को हक़ीर (नीच) समझे।"

(हदीस : मुस्लिम, मिशकात)

एक दूसरी हदीस में प्यारे नबी (सल्ल॰) ने यूँ नसीहत फ़रमाई—

"कोई मुसलमान दूसरे मुसलमान की न तो बेइज़्ज़ती करे और न तहक़ीर।"

एक बार नबी (सल्ल॰) ने यह फ़रमाया कि जिसके दिल में ज़र्रा बराबर भी घमण्ड होगा वह जन्नत में न जाएगा और फिर एक आदमी के सवाल के जवाब में घमण्ड की तशरीह इस तरह की—

"घमण्ड से हक़ को रद्द करना और लोगों को हक़ीर और ज़लील समझना।"

(हदीस : मुस्लिम, मिशकात)

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) एक हदीस में तीन नजात देनेवाले और तीन हलाक कर देनेवाले मामले बताते हुए कहते हैं—

"हलाक कर देनेवाली एक चीज़ अपने-आपको बुज़ुर्ग व बरतर समझना है, और यह सबसे बुरी आदत है।"

(हदीस : बैहक़ी, मिशकात)

आज के समाज में न सिर्फ़ अपने साथियों के साथ, बल्कि आम मुसलमानों के साथ अपने मामलों में इस्लामी जमाअत के कारकुनों को इस पहलू से ख़ास तौर पर अपने-आपको जाँचना और परखना चाहिए।

बदगुमानी

बदगुमानी की बीमारी ऐसी बीमारी है जो आपसी सम्बन्धों को घुन लगा देती है और दीमक की तरह चाट जाती है। गुमान आम और प्रचलित मानी में ऐसे ख़याल के लिए बोला जाता है जो बिना वाज़ेह सुबूत और दलीलों के अटकल से क़ायम कर लिया जाए, जिसके पीछे इल्म न हो। और अगर यह ख़याल बुरा हो तो यह बदगुमानी है। जब एक मुसलमान अपने भाई के बारे में बिना किसी इल्म के बदगुमानी शुरू कर दे तो प्यार-मुहब्बत वहाँ से रुख़सत होने लगती है।

क़ुरआन मजीद ने इस सिलसिले में इस तरह नसीहत की है—

"ऐ ईमानवालो! बहुत गुमानों से बचो कि कुछ गुमान गुनाह हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-12)

और प्यारे नबी (सल्ल॰) ने अपने साथियों को इस बारे में इस तरह नसीहत की है—

"तुम गुमान से बचो, इसलिए कि गुमान बदतरीन झूठी बात है।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, मिशकात)

गुमान से बचने का सबसे अहम तक़ाज़ा यह है कि आदमी अपने भाई की नीयत के बारे में कभी कोई बात बुरी न कहे और न सोचे। इसलिए कि नीयत ऐसी चीज़ है जिसके बारे में कभी कोई वाज़ेह इल्म नहीं हो सकता। यह हमेशा अटकल ही होगा। फिर इस बारे में अगर कुछ बातें नज़र के सामने रखी जाएँ तो इस बीमारी का बड़ी आसानी से मुक़ाबला किया जा सकता है।

1. पहली बात यह है कि जहाँ एक तरफ़ हर मुसलमान की ज़िम्मेदारी है कि वह अपने भाई की तरफ़ से बदगुमानी न करे, वहाँ यह भी फ़र्ज़ है कि किसी दूसरे को अपनी तरफ़ से बदगुमानी का मौक़ा न दे। जहाँ तक हो सके ऐसी बात से बचे जो बदगुमानी का मौक़ा मुहैया कर देती हो। दूसरों को फ़ितने और आज़माइश में नहीं डालना चाहिए। इसकी मिसाल ख़ुद प्यारे नबी (सल्ल॰) ने यह बताई है—

एक बार नबी (सल्ल॰) एतिकाफ़ (मस्जिद में बैठना) में बैठे हुए थे। रात के वक़्त आप (सल्ल॰) की बीवियों में से कोई आप (सल्ल॰) से मिलने आईं। आप (सल्ल॰) उनको वापस पहुँचाने चले तो अचानक रास्ते में दो अनसारी सहाबी मिल गए। वे आप (सल्ल॰) को औरत के साथ देखकर अपने आने को बेमौक़ा समझकर वापस चलने लगे। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़ौरन आवाज़ दी और कहा, "मेरी फ़ुलाँ बीवी है।" उन्होंने अर्ज़ किया "ऐ अल्लाह के नबी! अगर किसी के साथ बदगुमानी करनी होती तो क्या आपके साथ करते?"

नबी (सल्ल॰) ने जवाब दिया, "शैतान इनसान के अन्दर ख़ून की तरह दौड़ता है।"

2. अगर पूरी कोशिश के बावजूद बदगुमानी पैदा हो तो फिर उसको कभी दिल में न रखे, क्योंकि बदगुमानी को दिल में रखना बग़ावत और ख़ियानत है। बल्कि उसको तुरन्त जाकर अपने भाई पर ज़ाहिर कर दे, ताकि वह उसको दूर कर सके और जिसपर बदगुमानी का इज़हार किया जाए उसका फ़र्ज़ है कि वह तुरन्त उसकी सफ़ाई कर दे, ताकि दिल साफ़ हो जाए, चुप्पी न साध ले, वरना फिर उस गुनाह का बहुत कुछ बोझ उसकी तरफ़ भी आकर पड़ सकता है।

बुहतान

एक मुसलमान अपने भाई को जान-बूझकर मुजरिम ठहराए या उसकी तरफ़ कोई झूठा गुनाह मंसूब करे तो यह बुहतान है और यह साफ़-साफ़ एक तरह का झूठ और ख़ियानत है। बुहतान (तोहमत) की एक और बदतरीन शक्ल यह है कि आदमी अपना गुनाह किसी दूसरे के सिर डाल दे। इसके बारे में क़ुरआन मजीद ने यह कहा है—

> "फिर जिसने कोई ख़ता या गुनाह करके उसका इलज़ाम किसी बेगुनाह पर थोप दिया, उसने तो बड़े नुक़सान और खुले गुनाह का बोझ समेट लिया।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-112)

इसी तरह मुसलमानों पर बिन किए झूठा आरोप लगाने पर यह कहा गया है—

> "और जो लोग ईमानवाले मर्दों और ईमानवाली औरतों को बिन किए तोहमत लगाकर तकलीफ़ पहुँचाते हैं, उन्होंने एक बड़े बुहतान और खुले गुनाह का वबाल अपने सिर ले लिया है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-58)

एक मुहब्बत भरे ताल्लुक़ में इसकी गुंजाइश कहाँ निकल सकती है।

नुक़सान पहुँचाना

नुक़सान या तकलीफ़ का शब्द भी बड़ा वसीअ (व्यापक) है लेकिन

इसके मानी अस्ल में ये हैं कि मुसलमान इस चीज़ का पूरा ध्यान रखे कि उसके भाई को उसकी ज़ात से कोई नुक़सान न पहुँचे। यह नुक़सान जिस्मानी भी हो सकता है और दिली भी। इसी लिए नबी (सल्ल०) ने बहुत ही सख़्त अन्दाज़ में कहा है—

"मलऊन है वह आदमी जो किसी ईमानवाले को नुक़सान पहुँचाए या किसी के साथ मकर (धोखा) करे।"

(हदीस : तिरमिज़ी, मिशकात)

इसी तरह नबी (सल्ल०) ने यह कहा—

"जो किसी ईमानवाले को नुक़सान पहुँचाएगा तो अल्लाह उसे नुक़सान पहुँचाएगा, और जो किसी ईमानवाले को तकलीफ़ में डालेगा तो अल्लाह उसे तकलीफ़ में डालेगा।"

(हदीस : इब्ने-माजा, तिरमिज़ी)

दिल दुखाना

कोई मुसलमान अपने भाई को तकलीफ़ और दुख पहुँचाए यह एक ऐसी चीज़ है जिसे उसके दिल को हरगिज़ गवारा न करना चाहिए। एक भाई के दिल को दूसरे भाई से कई चीज़ों की वजह से तकलीफ़ पहुँच सकती है।

उन तमाम मोटी-मोटी बातों के अलावा जिनको तफ़सील से बयान किया जा चुका है, ज़िन्दगी के मामलों में छोटी-छोटी बातों में फ़ितरत और मिज़ाज भी दिली दुख-तकलीफ़ की वजह बन सकता है। उसूली बात यह है कि हर मुसलमान की यह कोशिश होनी चाहिए कि उससे कोई ऐसी बात न हो जाए जो उसके भाई के दिल को तकलीफ़ पहुँचाए या जिससे उसके जज़बात को ठेस पहुँचे।

ग़ीबत जैसे बड़े जुर्म की बुनियाद भी यही है। इसी लिए ग़ीबत की तफ़सील और मतलब यह बताया गया है कि किसी आदमी के बारे में इस तरह का ज़िक्र करना जिसे वह नापसन्द करे या जिससे उसको तकलीफ़ पहुँचे।

इसी तरह अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने नसीहत की कि जब तीन आदमी हों तो दो आदमी आपस में कानाफूसी न करें, यहाँ तक कि बहुत-से आदमियों में मिल जाएँ तब ऐसा कर सकते हैं और इस हुक्म की जो वजह बयान हुई है वह यह है—

"इस ख़ौफ़ से कि कहीं वह ग़मगीन न हो।"

(हदीस : मुस्लिम, मिशकात)

अगर इन आदाब की बातों की सूची पर एक नज़र डाली जाए जो इस्लाम ने दिए हैं तो यह मालूम होगा कि किसी मुसलमान भाई के दिल को दुख-तकलीफ़ न पहुँचे, एक बुनियादी उसूल के तौर पर कारफ़रमा है, मुसलमानों को चोट पहुँचाना या दुख देना इस्लाम के नज़रिए से इतना बुरा काम है कि प्यारे नबी (सल्ल॰) ने इस बारे में कहा—

"जिसने किसी मुसलमान को तकलीफ़ दी उसने अल्लाह को तकलीफ़ दी।" (हदीस : तबरानी, तर्जमानुस्सुन्नह्)

और इसके बरख़िलाफ़ किसी के दिल को ख़ुश करने के लिए कोई काम करे तो उसके बारे में यह फ़रमाया—

"जो मेरी उम्मत में से किसी की ज़रूरत पूरी करे और उसका मक़सद यह हो कि उसे ख़ुश करे तो उसने मुझे ख़ुश किया और जिसने मुझे ख़ुश किया उसने अल्लाह को ख़ुश किया और जिसने अल्लाह को ख़ुश किया तो अल्लाह ने उसको जन्नत में दाख़िल कर दिया।" (हदीस : बैहक़ी, मिशकात)

और यहाँ पर अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की यह बात भी याद करने के क़ाबिल है कि ईमानवाला तो वह है जो सरापा मुहब्बत हो। जो आदमी किसी से मुहब्बत न करे और न कोई उससे मुहब्बत करे तो उसमें भलाई की गंध भी नहीं। दिल दुखाने की एक मामूली सूरत हँसी-मज़ाक़ में परेशान करने की होती है। यानी ऐसा मज़ाक़ जिससे सच में दूसरा परेशान हो जाए और उसके दिल को तकलीफ़ हो।

एक बार नबी (सल्ल॰) के प्यारे सहाबा (रज़ि॰) आप (सल्ल॰) के साथ

रात में सफ़र कर रहे थे। जब एक जगह क़ाफ़िला ठहरा तो उनमें से एक आदमी उठा और दूसरे आदमी की रस्सी जो वह अपने साथ लेकर सो रहा था उठा ली और इस तरह उसे परेशान किया। नबी (सल्ल॰) ने कहा—

> "मुसलमान के लिए यह हलाल नहीं कि किसी मुसलमान को हँसी-मज़ाक़ में परेशान करे।" (हदीस : अबू-दाऊद)

इसी तरह एक बार हथियार छिपाने का वक़िआ हुआ तो नबी (सल्ल॰) ने मना फ़रमाया—

> "किसी ईमानवाले को डराया जाए हँसी-मज़ाक़ में या हक़ीक़त में किसी का कोई सामान ले लिया जाए।"
>
> (हदीस : तर्जमानुस्सुन्नह्)

धोखा देना

मुसलमानों को इस बात से मना किया गया है कि वे अपने भाई को बातचीत या मामलात में धोखा दें, ग़लत-बयानी से काम लें या उसे किसी ग़लत बात के पीछे डाल दें। एक ऐसे ताल्लुक़ में जहाँ एक पक्ष दूसरे पक्ष के साथ इस तरह की हरकत कर सकता है, कभी भी एक आदमी दूसरे पर भरोसा नहीं कर सकता और जहाँ एक आदमी के लिए दूसरे की बात भी भरोसे के लायक़ न हो वहाँ प्यार-मुहब्बत और भरोसा किसी तरह भी मौजूद नहीं हो सकता। हदीसों में इस चीज़ को बदतरीन ख़ियानत क़रार दिया गया है। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "सबसे बड़ी ख़ियानत यह है कि तू अपने भाई से कोई बात कहे, वह तुझे सच्चा समझ रहा हो जबकि तू उससे झूठ बोल रहा हो।"
>
> (हदीस : तिरमिज़ी, मिशकात)

हसद (ईर्ष्या)

हसद वह बुरी बीमारी है जो अगर इनसान के दिल में राह पा ले तो फिर न सिर्फ़ यह कि दिली ताल्लुक़ को ख़त्म करके रख देती है, बल्कि आदमी का ईमान भी ख़तरे में पड़ जाता है। हसद की परिभाषा यह है कि इनसान दूसरे इनसान पर अल्लाह की किसी नेमत, मिसाल के तौर पर माल-दौलत

या इल्म व फ़ज़्ल (कृपा) या हुस्न व कमाल को पसन्द न करे और यह ख़ाहिश करे कि उससे यह नेमतें छीन ली जाएँ। हसद में अपने लिए नेमत की चाह पर दूसरे से छिन जाने की ख़ाहिश ग़ालिब रहती है।

हसद की वजह कभी तो दुश्मनी और वैर होता है, कभी ज़ाती घमण्ड और दूसरे की कमतरी का एहसास, कभी दूसरों को अधीन बनाने का जज़्बा और कभी किसी साझा मक़सद में अपनी नाकामी और दूसरों की कामयाबी और कभी सिर्फ़ शानो-शौकत की चाहत इसकी वजह बनती है। हसद के बारे में नबी (सल्ल०) ने इस तरह ख़बरदार किया है—

"तुम लोग हसद से बचो, क्योंकि हसद नेकियों को इस तरह खा जाता है जिस तरह आग लकड़ियों को खा जाती है।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

और यह वह चीज़ है जिससे क़ुरआन मजीद ने हर मुसलमान को पनाह माँगने की हिदायत की है—

"और हसद करनेवाले की बुराई से जबकि वह हसद करे।"

(क़ुरआन, सूरा-113 फ़लक़, आयत-5)

एक बड़ी अहम हिदायत में जिसमें नबी (सल्ल०) ने उन चीज़ों को बताया है जिनका छोड़ना भाई-भाई बनने के लिए ज़रूरी है और जिसके बारे में कुछ बातें बदगुमानी के उनूवान (शीर्षक) के तहत कही जा चुकी हैं। नबी (सल्ल०) ने आगे जो कुछ कहा वह यह है—

"किसी के ऐबों की टोह मत लगाओ, किसी के बारे में खोज-बीन न करो, किसी के तिजारती मामले को न बिगाड़ो, आपस में हसद न करो, आपस में दुश्मनी (कीना) न रखो, आपस में एक-दूसरे से बे-ताल्लुक़ न रहो, आपस में हिर्स (लोभ-लालच) न करो और ख़ुदा के बन्दे और भाई-भाई बनकर रहो।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, मिशकात)

हदीस के मशहूर टीकाकार हाफ़िज़ इब्ने-हजर अस्क़लानी इसकी टीका यह करते हैं कि इसका मतलब यह है कि जब तुम लोग उन मना की गई

चीज़ों को छोड़ोगे तो भाई-भाई हो जाओगे। फिर नबी (सल्ल॰) ने इस हसद और कीना के बारे में यह भी फ़रमाया—

> "पहली उम्मतों की बीमारियाँ तुम्हारे अन्दर घुस गई हैं और वे बीमारियाँ हसद और कीना हैं जो मूँड देनेवाली हैं। मैं यह नहीं कहता कि बालों को मूँड देती हैं, बल्कि दीन (धर्म) का सफ़ाया कर देती हैं।" (हदीस : अहमद, तिरमिज़ी, मिशकात)

इन चीज़ों को रोकने के साथ-साथ जो ताल्लुक़ात में ख़राबी और बिगाड़ का सबब बनती हैं अल्लाह और उसके पैग़म्बर (सल्ल॰) ने हमको वे चीज़ें भी तय करके बता दी हैं, जिनको अपनाना ताल्लुक़ात के मज़बूत और पाएदार बनने का सबब होता है। प्यार-मुहब्बत और लगाव में बढ़ौत्तरी होती है और जिसके नतीजे में एक दिल दूसरे दिल से इस तरह क़रीब आता चला जाता है जैसे एक हाथ की दो उँगलियाँ। उनमें कुछ चीज़ें हैं जिनको ज़रूरी ठहराया गया है या यूँ कहिए कि वे हुक़ूक़ के तौर पर पेश की गई हैं। और कुछ चीज़ें ऐसी हैं जिनके लिए उभारा गया है और उनको पूरा करने का बड़ा सवाब बताया गया है। सीरत (मुहम्मद सल्ल॰ के जीवन चरित्र) की और जिन बुनियादी ख़ूबियों की बुनियाद पर क़ुरआन और हदीस से हमको जो हिदायतें मिलती हैं, जिनमें से हर एक की रूह (आत्मा) तो उन्हीं ख़ूबियों की है, उनको अलग से सामने रखना ज़रूरी है, इसलिए कि प्यार-मुहब्बत और लगाव के माहौल को परवान चढ़ाने के लिए उनमें से हर चीज़ अहम है।

इज़्ज़त और आबरू की रक्षा

एक इनसान के नज़दीक सबसे ज़्यादा क़ीमती चीज़ उसकी इज़्ज़त-आबरू होती है और अगर उस इज़्ज़त को बरबाद किया जाए तो उसे वह किसी भी सूरत में गवारा नहीं कर सकता। इसलिए एक तरफ़ जहाँ मुसलमानों को इस बात से मना किया गया है कि वे किसी तरीक़े से भी अपने भाई की इज़्ज़त पर हमला करने का सबब न हों, वहाँ इस बात की ख़ास ताकीद की गई है और इसे एक हक़ बताया है कि मुसलमान अपने भाई की इज़्ज़त-आबरू की हिफ़ाज़त करे। कहीं उसे बुरा-भला कहा जा रहा हो, कहीं उसपर तोहमत

लगाई जा रही हो तो उसका फ़र्ज़ है कि वह उसका उसी तरह मुक़ाबला करे जिस तरह अपनी इज़्ज़त पर हमले का मुक़ाबला करता है और उसपर उसे उतनी ही तकलीफ़ हो जितनी अपनी इज़्ज़त ख़राब होने पर होती है। अगर एक मुसलमान को इस बात का यक़ीन हो कि उसकी इज़्ज़त उसके मुसलमान भाई के हाथों महफ़ूज़ (सुरक्षित) है तो उसको अपने भाई से एक दिली लगाव पैदा होगा, लेकिन अगर इस बात का भी यक़ीन हो कि वह उसके सामने और उसकी पीठ-पीछे उसकी इज़्ज़त का उसी तरह मुहाफ़िज़ है जिस तरह वह ख़ुद अपना हो सकता है तो ज़ाहिर है कि उसके दिल में कितनी गहरी जगह पैदा हो जाएगी। इसलिए नबी (सल्ल०) ने कहा—

> "जो मुसलमान किसी मुसलमान की मदद और हिमायत करने से ऐसे मौक़े पर बैठ जाता है जहाँ उसकी इज़्ज़त की धज्जियाँ उड़ाई जा रही हों और उसकी बेइज़्ज़ती की जा रही हो तो अल्लाह भी उस नाज़ुक मौक़े पर उसकी मदद करना तंग कर देता है, जहाँ वह यह चाहता हो कि कोई उसकी मदद और हिमायत के लिए खड़ा हो। और जो मुसलमान किसी मुसलमान की मदद के लिए ऐसे मौक़े पर खड़ा हो जाता है जहाँ उसकी बेइज़्ज़ती हो रही हो या उसकी इज़्ज़त ख़राब की जा रही हो तो अल्लाह तआला ऐसे मौक़े पर उसकी मदद और हिमायत करता है, जहाँ वह चाहता है कि कोई उसकी मदद करता।" (हदीस : अबू-दाऊद, मिशकात)

अल्लाह की सबसे बड़ी मदद यह है कि वह आग से बचाए। इसी लिए नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया है—

> "जो मुसलमान अपने मुसलमान भाई को बेइज़्ज़ती करने से किसी को रोके तो अल्लाह पर उसका हक़ है कि वह जहन्नम की आग उससे रोक ले। फिर आप (सल्ल०) ने यह आयत पढ़ी—
>
> "ईमानवालों की मदद हमारे ऊपर एक हक़ है।"
>
> (हदीस : शरहुस्सुन्नह, मिशकात)

बेइज़्ज़ती करने की एक बहुत आम शक्ल ग़ीबत है जिसको पीछे बयान

किया जा चुका है। इसके बारे में नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जिस आदमी के सामने उसके मुसलमान भाई की ग़ीबत की जाए और वह उसकी मदद करने की ताक़त रखता हो और फिर उसकी मदद करे तो अल्लाह दुनिया और आख़िरत दोनों में उसकी मदद करेगा, और मदद पर ताक़त रखने के बावजूद उसकी मदद न करे तो अल्लाह दुनिया और आख़िरत में उसे पकड़ लेगा।"

(हदीस : शरहुस्सुन्नह्, मिशकात)

अपने भाई को दूसरों की शरारतों से सुरक्षित रखने के सिलसिले में ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने कहा है—

"जिसने किसी मुस्लिम को मुनाफ़िक़ (कपटाचारी की शरारत) से बचाया तो अल्लाह उसके लिए एक फ़रिश्ता मुक़र्रर करेगा जो उसके गोश्त को क़ियामत के दिन जहन्नम की आग से महफ़ूज़ (सुरक्षित) रखेगा।" (हदीस : अबू-दाऊद, मिशकात)

एक मुसलमान पर अपने भाई की मदद के सिलसिले में अनगिनत हुक़ूक़ आइद होते हैं। मिसाल के तौर पर माल से मदद, मुश्किलों को दूर करना, मसलों को हल करने की कोशिश करना और दूसरी कई तरह की दीनी, दुनियावी हाजतों और ज़रूरतों को पूरा करना। ये सारी चीज़ें क़ानून के दायरे से बाहर एहसान व उपकार के दायरे से ताल्लुक़ रखती हैं, जो हालाँकि ज़रूरी हैं और जिनके बारे में आख़िरत में पूछ-गछ होगी, लेकिन इनके बारे में क़ानून बनाना मुमकिन नहीं। अगर एक मुसलमान दूसरे मुसलमान का पेट भर सकता है या उसके नंगे बदन को ढाँप सकता है या उसकी मुशकिल और मुसीबत को दूर करने में मदद कर सकता है जिसमें वह गिरफ़्तार हो या उसकी ज़रूरत पूरी कर सकता हो या वह उसकी माली (आर्थिक) और काम-काज से मुताल्लिक़ उलझन दूर कर सकता हो तो यह उसके भाई का उसपर हक़ है कि वह ऐसा करे वरना अल्लाह तआला क़ियामत के दिन उनमें से एक-एक चीज़ को अपना हक़ बताते हुए जवाब माँगेगा-कि तुमने यह हक़ क्यों न अदा किया। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने बहुत ही असरदार

अन्दाज़ में यह बताया है कि खुदा कहेगा कि "ऐ बन्दे! मैं भूखा था, तूने मुझको खाना क्यों न खिलाया? मैं नंगा था, तूने मुझे कपड़ा क्यों न दिया? मैं बीमार था, तूने मेरी इयादत (बीमारपुर्सी) क्यों न की?" और बन्दे के पास कोई जवाब न होगा। अल्लाह के किसी बन्दे और अपने किसी मुसलमान भाई की मदद करना या कोई ज़रूरत पूरी करना इतनी बड़ी नेकी है कि कम ही नेकियाँ इतने बड़े दर्जे को पहुँच सकती हैं। इसकी अस्ल रूह यह है कि कोई भी ऐसा तरीक़ा हो जिससे एक मुसलमान अपने भाई को आराम पहुँचा सकता हो या उसके दिल को खुश कर सकता हो, इसमें बिलकुल न चूके।

जब तक एक आदमी अपने भाई की मदद में लगा रहता है तो वह अल्लाह की मदद का हक़दार रहता है। अल्लाह के नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"अल्लाह अपने बन्दे की मदद में उस वक़्त तक रहता है जब तक वह बन्दा अपने भाई की मदद में लगा रहता है।"

(हदीस : मुस्लिम, तिरमिज़ी)

इसी हदीस में नबी (सल्ल०) मदद और सहायता के विभिन्न पहलुओं पर रौशनी डालते हुए हर एक का अज्र (सवाब) इस तरह सुनाते हैं—

"जिसने किसी ईमानवाले की कोई मुशकिल दुनिया की मुशकिलों में से दूर कर दी, अल्लाह क़ियामत के दिन की मुशकिलों में से उसकी एक मुशकिल दूर कर देगा। जिसने किसी तंगहाल आदमी के लिए आसानी पैदा की, अल्लाह उसके लिए दुनिया और आख़िरत में आसानी पैदा करेगा। जिसने किसी मुसलमान की परदा-पोशी की तो अल्लाह दुनिया और आख़िरत में उसकी परदा-पोशी करेगा।" (हदीस : मुस्लिम)

इस बारे में कुछ बातें नबी (सल्ल०) ने एक दूसरी हदीस में इस तरह बयान की हैं—

"मुसलमान मुसलमान का भाई है। न तो वह उसपर ज़ुल्म करे न अपनी मदद से हाथ रोक करके उसको हलाकत के हवाले कर दे।

जो अपने भाई की ज़रूरत पूरी करेगा और जो किसी मुसलमान का ग़म या मुसीबत दूर करेगा, अल्लाह उसकी क़ियामत के दिन की मुशकिलों में से कोई मुशकिल दूर कर देगा।''

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, मिशकात)

मदद और अच्छे सुलूक का एक बहुत बड़ा हिस्सा माल में लागू होता है। हर महरूम आदमी इसका हक़दार है कि जिसको अल्लाह ने इस नेमत से हिस्सा दिया है वह उसकी मदद करे। क़ुरआन में है–

''और तुम्हारे मालों में तयशुदा हक़ है सवाल करनेवाले और महरूम (वंचित) का।'' (क़ुरआन, सूरा-51 ज़ारियात, आयत-19)

नबी (सल्ल॰) ने इसको बड़े प्यारे अन्दाज़ में यूँ पेश किया है–

''मख़लूक़ ख़ुदा का कुम्बा हैं। बस ख़ुदा के नज़दीक उसकी मख़लूक़ में से सबसे पसन्दीदा और प्यारा वह है जो उसके कुम्बे से अच्छा सुलूक करे।'' (हदीस : बैहक़ी, मिशकात)

भूखों को खाना खिलाने की क़ुरआन ने बहुत ताकीद की है। क़ुरआन की शुरुआती मक्की सूरतें इससे भरी पड़ी हैं। नबी (सल्ल॰) ने मदीना आकर मुसलमानों को सबसे पहले ख़ुतबे में जिन चार बातों की हिदायत की और यह कहा कि इसके बाद तुम जन्नत में दाख़िल हो सकते हो, उनमें से एक यह थी–

''और खाना खिलाओ।''

और यह फ़रमाया–

''वह आदमी ईमानवाला नहीं जो ख़ुद पेट-भरकर खाना खाए और उसका पड़ोसी उसके पड़ोस में भूखा हो।''

(हदीस : बैहक़ी, मिशकात)

एक शख़्स ने नबी (सल्ल॰) से अपनी संगदिली (कठोरता) की शिकायत की तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

''यतीम के सिर पर हाथ फेर और ग़रीब को खाना खिला।''

(हदीस : अहमद, मिशकात)

किसी फ़रियादी की फ़रियाद सुनकर उसकी भरपूर मदद करना इसी मदद का एक हिस्सा है। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जिसने किसी फ़रियादी की फ़रियाद सुनी और उसकी भरपूर मदद की तो अल्लाह उसके लिए तिहत्तर बख़शिशें (इनाम) लिख देता है, उनमें से एक इनाम उसके सारे कामों के सुधार की ज़मानत है। बहत्तर बख़शिश क़ियामत के दिन उसके दर्जे बुलन्द करने का सबब बनेंगी।" (हदीस : बैहक़ी, मिशकात)

किसी ज़रूरतमन्द की सिफ़ारिश कर देना या उसकी शफ़ाअत (नजात की सिफ़ारिश) करना भी सहायता और मदद की एक सूरत है जो अगर उसकी भलाई के लिए हो तो अल्लाह ने क़ुरआन में उसकी तारीफ़ (प्रशंसा) इस तरह की है—

"जो नेक बात की सिफ़ारिश करेगा उसके सवाब में उसका हिस्सा भी होगा।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-85)

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ख़ुद अपने साथियों (रज़ि॰) को जब कोई माँगनेवाला या ज़रूरतमन्द आता तो नसीहत करते कि—

"उसकी सिफ़ारिश करो और सवाब में हिस्सा लो।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

मदद के कई मरहलों और सूरतों को नबी (सल्ल॰) ने एक बार हज़रत अबू-ज़र ग़िफ़ारी (रज़ि॰) से बातचीत करते हुए वाज़ेह किया। उन्होंने पूछा कि ईमान के साथ अमल बताइए, नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"जो रोज़ी ख़ुदा ने दी है उसमें से दूसरों को दो।"

उन्होंने पूछा, "ऐ अल्लाह के पैग़म्बर! अगर वह ख़ुद मुफ़लिस हो?" कहा "अपनी ज़बान से नेक काम करो।" फिर पूछा, "अगर वह अपनी ज़बान से माज़ूर (नेक काम न कर सकता) हो।" फ़रमाया, "कमज़ोर की मदद करे।" उन्होंने पूछा, अगर वह कमज़ोर हो और मदद करने की ताक़त न हो? फ़रमाया, "जिसको कोई काम करना न आता हो उसका काम कर दे।" फिर पूछा, "अगर वह ख़ुद ही ऐसा नाकारा हो।" फ़रमाया,

"अपने-आपको लोगों को दुख-तकलीफ़ पहुँचाने से रोके रखे।"

(सीरतुन्नबी भाग 6, पृष्ठ-288)

और फिर यह हदीस भी दोहरा लेने की ज़रूरत है जिसमें नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"जो आदमी मेरी उम्मत में से किसी की दीनी या दुनियावी ज़रूरत पूरी करे और इससे उसका मक़सद सिर्फ़ उसे ख़ुश करना हो तो उसने मुझको ख़ुश किया और जिसने मुझको ख़ुश किया उसने अल्लाह को ख़ुश किया और जिसने अल्लाह को ख़ुश किया तो अल्लाह उसको जन्नत में दाख़िल करेगा।"

इस बारे में एक बड़ी अच्छी रिवायत हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) ने बयान की है कि नबी (सल्ल॰) के पास एक आदमी आया और उसने पूछा कि लोगों में अल्लाह के नज़दीक ज़्यादा महबूब (प्यारा) कौन है? आप (सल्ल॰) ने जवाब दिया—

"लोगों में अल्लाह के नज़दीक ज़्यादा प्यारा वह है जो इनसानों को ज़्यादा फ़ायदा पहुँचानेवाला हो और अमल (कर्मों) में अल्लाह के नज़दीक ज़्यादा पसन्दीदा यह है कि तू किसी मुसलमान को ख़ुश कर दे, इस तरह कि उसकी मुसीबत और मुशकिल दूर करे या उसपर से भूख को हटा दे और यह बात कि मैं किसी भाई के साथ उसकी ज़रूरत पूरी करने के लिए चलूँ, मुझे इससे ज़्यादा पसन्दीदा है कि मैं उस मस्जिद (मस्जिदे-नबवी) में एक महीना एतिकाफ़ करूँ, और जिसने अपने ग़ुस्से को पी लिया अगर वह चाहता तो इसको पूरा कर लेता तो उसके दिल को अल्लाह क़ियामत के दिन अपनी ख़ुशनूदी से भर देगा और जो अपने भाई के साथ उसकी ज़रूरत पूरी करने के लिए चला यहाँ तक कि वह पूरी कर दी तो अल्लाह उसके क़दमों को उस दिन जमाव अता (प्रदान) करेगा जब क़दम लड़खड़ा रहे होंगे (यानी क़ियामत के दिन)।" (हदीस : तबरानी)

दुख-दर्द में शामिल होना

अपने भाई की मदद और ज़रूरत पूरी करने और उसके साथ अच्छा

सुलूक करने की अस्ल बुनियाद यह है कि एक का दुख-दर्द दूसरे का दुख-दर्द हो। एक शख़्स अगर दूसरे की तकलीफ़ महसूस करे तो दूसरा भी उसको उतनी ही शिद्दत से महसूस करे और जिस तरह बदन का एक अंग दूसरे सारे अंगों की तकलीफ़ में शामिल रहता है उसी तरह एक मुसलमान दूसरे मुसलमान की तकलीफ़ों में शामिल रहे।

प्यारे नबी (सल्ल॰) ने कई मिसालों से इस बात को वाज़ेह (स्पष्ट) किया। मिसाल के तौर पर एक बार आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "तुम मोमिनों को आपसी रहमदिली, आपसी प्यार और मुहब्बत और आपसी तकलीफ़ के एहसास में ऐसा पाओगे जैसे एक बदन। अगर एक अंग बीमार पड़ जाए तो सारा बदन उसके बुख़ार और रातभर जागकर शिरकत करता है।"
>
> (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, मिशकात)

इसी तरह एक हदीस में नबी (सल्ल॰) ने इसकी और ज़्यादा वज़ाहत इस तरह की है कि एक सच्चा मुस्लिम समाज में ऐसा होता है जैसे बदन में सिर, जिस तरह सिर-दर्द की वजह से सारा बदन तकलीफ़ में पड़ जाता है, उसी तरह सच्चा मुसलमान भाइयों की तकलीफ़ से खुद तकलीफ़ और दुख में मुब्तला हो जाता है। मुसबत (सकारात्मक) तौर पर आप (सल्ल॰) ने इसकी मिसाल इस तरह पेश की है—

> "एक मुसलमान को दूसरे मुसलमान के लिए इमारत की तरह होना चाहिए और एक को दूसरे से इस तरह मज़बूती और ताक़त पहुँचनी चाहिए जैसे मकान की एक ईंट से दूसरी ईंट को पहुँचती है।" इसके बाद आप (सल्ल॰) ने एक हाथ की उँगलियाँ दूसरे हाथ की उँगलियों में डाल दीं। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, मिशकात)

एहतिसाब (निरीक्षण) और नसीहत

एक मुसलमान का यह फ़र्ज़ है कि वह अपने भाई के अमल और कामों पर निगाह रखे और जहाँ उसे सीधे रास्ते से हटते देखे वहाँ उसको नसीहत करे और सीधा करने की कोशिश करे, यह एक मुसलमान का दूसरे मुसलमान

पर हक़ है। हालाँकि इस हक़ की अदायगी एक ऐसी चीज़ है जो ज़्यादातर नागवार गुज़रती है। लेकिन यह बिलकुल सच्ची बात है कि अगर एक आदमी के दिल में इस बात का पूरा एहसास हो कि अस्ली कामयाबी आख़िरत की कामयाबी है, और ताल्लुक़ की बुनियाद यह है कि दो भाई एक-दूसरे को यह कामयाबी हासिल करने में मदद दें। क्योंकि दुनिया में एहतिसाब (निरीक्षण) कर लेना आख़िरत में लिए जानेवाले हिसाब से बेहतर है तो वह अपने दिल में यक़ीनन अपने भाई का शुक्रगुज़ार होगा कि उसने दुनिया ही में उसको सुधार का मौक़ा दिया और फिर अगर तनक़ीद (आलोचना) और एहतिसाब करनेवाला उन सभी शर्तों का ध्यान रखे जो बहुत ज़रूरी हैं और ख़ास तौर पर अगर यह काम दिली लगाव, मुहब्बत और ख़ुलूस से हो तो यह भी सच्चाई है कि इस शुक्रगुज़ारी से प्यार-मुहब्बत और आपसी लगाव में बढ़ौत्तरी होगी। इसलिए कि फिर तनक़ीद करनेवाले के बारे में एक बहुत बड़े मुहसिन का तसव्वुर पैदा होगा। तनक़ीद की सारी शर्तों को प्यारे नबी (सल्ल॰) ने अपनी इस हदीस में एक मिसाल से वाज़ेह कर दिया है जिसमें आप (सल्ल॰) ने इसकी नसीहत की है। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"तुममें से हर एक अपने भाई का आइना (दर्पण) है, फिर अगर वह अपने भाई में कोई ख़राबी देखे तो उसे दूर कर दे।"
(हदीस : तिरमिज़ी, मिशकात)

और एक दूसरी हदीस में ये शब्द हैं—

"एक ईमानवाला दूसरे ईमानवाले का आइना (दर्पण) है और एक ईमानवाला दूसरे का भाई है और उसके हक़ को उसकी ग़ैर-मौजूदगी में भी महफ़ूज़ रखता है।" (हदीस : अबू-दाऊद, मिशकात)

इस मिसाल की रौशनी में एहतिसाब और नसीहत के नीचे लिखे उसूल बनाए जा सकते हैं—

1. बुराइयों की टोह में नहीं लगना चाहिए। इसलिए कि आइना (दर्पण) कभी टोह नहीं लगाता। वह उस वक़्त ज़ाहिर करता है जब आप उसके

सामने जाकर खड़े हों।

2. पीठ के पीछे तनक़ीद न हो, इसलिए कि आइना किसी की शक्ल उस वक़्त तक ज़ाहिर नहीं करता जब तक कि वह उसके सामने न हो।

3. तनक़ीद में कोई इज़ाफ़ा (बढ़ावा) न होना चाहिए, इसलिए कि आइना बिना घटाए-बढ़ाए और बिना मुबालग़ा (अतिशयोक्ति) निशान स्पष्ट कर देता है।

4. तनक़ीद बेलाग होनी चाहिए और क़िसी बदनीयती और ग़रज़ (स्वार्थ) से पाक, इसलिए कि आइना जिसका नक़्श पेश करता है उससे कोई कीना नहीं रखता।

5. बात कह देने के बाद उसे पालना नहीं चाहिए। इसलिए कि सामने से हट जाने के बाद आइना शक्ल को महफ़ूज़ नहीं रखता। या दूसरे शब्दों में परदा नहीं उठाना चाहिए। यानी भेद नहीं खोलना चाहिए।

6. और फिर सबसे अहम बात यह है कि इसमें बहुत ही नरमी, दुख, दर्द, ख़ुलूस और मुहब्बत काम कर रही है, जिसका एहसास ही उस नागवारी के हल्के से एहसास को फ़ना कर दे जो हर आदमी के अन्दर फ़ितरी तौर पर तनक़ीद सुनकर उभरने लगता है। इसी लिए 'मुस्लिम का आइना होने' के साथ 'मुस्लिम का भाई' भी कहा गया है। यह दिल सोज़ी उस वक़्त पैदा हो सकती है जब एक तरफ़ यह एहसास हो कि मेरे भाई की यह ख़राबी उसकी हलाकत का सबब बन सकती है और दूसरी तरफ़ अपने को अपने भाई से बड़ा न समझे। बल्कि बेहतर यह है कि उससे कमज़ोर और उससे ज़्यादा ख़ताकार व गुनहगार समझे।

मुलाक़ात

प्यार-मुहब्बत के सबसे पहले और बुनियादी तक़ाज़ों में से यह है कि आदमी जिससे मुहब्बत करता है, उससे ज़्यादा-से-ज़्यादा मिले, उससे दोस्ती और बातचीत करे और उसके पास बैठे। इनसानी नफ़सियात (मानसिकता) का शुरुआती तालिबे-इल्म (छात्र) भी जानता है कि न सिर्फ़ यह कि यह मुहब्बत का बुनियादी तक़ाज़ा है बल्कि मुहब्बत को बढ़ाने के लिए दिलों को

आपस में ज़्यादा-से-ज़्यादा जोड़ने के लिए यह असर करनेवाली चीज़ों में से एक है। मुहब्बत माँग करती है कि आदमी हर मुमकिन मौक़ा पाकर अपने भाई से मिल ले और हर मुलाक़ात मुहब्बत में और ज़्यादा बढ़ौत्तरी की वजह बनती है और इस तरह यह एक न ख़त्म होनेवाला सिलसिला बन जाता है। मुलाक़ात में अगर शरीअत के उन उसूलों को ध्यान में रखा जाए जिनपर हम पहले बातचीत कर आए हैं और जिनको फिर हम यूँ कह सकते हैं कि आदमी अपने भाई का दिल दुखाने और तकलीफ़ पहुँचाने को किसी तरह न सहन करे, और अगर उन चीज़ों को भी ध्यान में रखा जाए जो बाद में आनेवाली हैं तो मुमकिन नहीं कि दो मुसलमानों की मुलाक़ात ताल्लुक़ात को मज़बूत करने की वजह न बने और वह दो भाइयों के दिलों को क़रीब न ले आए, इसलिए हम देखते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने आपसी मुहब्बत के बारे में इसको ख़ास अहमियत दी है, इसकी हिमायत की है और इसकी अनगिनत नेकियाँ बताई हैं। एक हदीस में नबी (सल्ल॰) कहते हैं—

"नेक लोगों की संगत तनहाई (अकेलापन) से बेहतर है।"

(हदीस : बैहक़ी, मिशकात)

एक बार नबी (सल्ल॰) ने हज़रत अबू-ज़र (रज़ि॰) को सम्बोधित करते हुए कहा—

"तुम्हें मालूम है कि जब कोई मुसलमान अपने भाई को देखने और मुलाक़ात के मक़सद से घर से निकलता है तो उसके पीछे सत्तर हज़ार फ़रिश्ते होते हैं, वे उसके लिए दुआएँ करते हैं और कहते हैं कि ऐ हमारे पालनहार रब! यह सिर्फ़ तेरे लिए जुड़ा, तू इसे जोड़ दे। अगर तुझसे मुमकिन हो कि तू अपने जिस्म से यह (मुलाक़ात का) काम ले तो ज़रूर ऐसा कर।" (हदीस : बैहक़ी, मिशकात)

एक हदीस में अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने बड़े ही अच्छे तरीक़े से इस मुलाक़ात पर रौशनी डाली। फ़रमाया—

"एक आदमी अपने भाई से, जो किसी दूसरे गाँव में था, मुलाक़ात के लिए चला। अल्लाह ने उसके रास्ते पर एक फ़रिश्ते को बिठाया। फ़रिश्ते ने उससे पूछा, "कहाँ का इरादा है?" उसने जवाब दिया,

उस गाँव में मैं अपने भाई से मुलाक़ात को जाता हूँ। फ़रिश्ते ने कहा, "क्या तेरा उसपर किसी नेमत का हक़ है जो वुसूल करने जाता है।" उसने कहा, "नहीं, सिवाय इसके कोई वजह नहीं कि मैं उससे अल्लाह के लिए मुहब्बत करता हूँ।" फ़रिश्ते ने कहा, "मुझे अल्लाह ने तेरी तरफ़ भेजा है इस (ख़ुशख़बरी) के साथ कि वह तुझसे ऐसी ही मुहब्बत रखता है, जैसी तू उसकी ख़ातिर अपने दोस्त से रखता है।" (हदीस : बैहक़ी, मिशकात)

एक साहब ने हज़रत मुआज़-बिन-जबल (रज़ि०) पर अपनी मुहब्बत का इज़हार किया और कहा कि आपसे अल्लाह के लिए मुहब्बत करता हूँ। उन्होंने उनको अल्लाह के नबी (सल्ल०) की ख़ुशख़बरी सुनाई कि अल्लाह फ़रमाता है कि मेरी मुहब्बत उन लोगों के लिए वाजिब होगी जो मेरे लिए आपस में साथ बैठते हैं, मेरे लिए एक-दूसरे से मिलने जाते हैं और मेरे लिए एक-दूसरे पर माल ख़र्च करते हैं।

और अल्लाह के लिए आपस में मुहब्बत और मुलाक़ात का जो बदला आख़िरत में है उसकी ख़बर नबी (सल्ल०) ने यूँ दी है—

"जन्नत में याक़ूत के सुतून (खम्भे) हैं और उनपर ज़बरजद के (रत्नजड़ित) बाला ख़ाने और उनके दरवाज़े ऐसे चमकदार हैं जैसे तारे चमकते हैं।" सहाबा (रज़ि०) ने पूछा, ऐ अल्लह के नबी! उनमें कौन रहेगा? आप (सल्ल०) ने कहा, "वे जो अल्लाह के लिए आपस में मुहब्बत रखते हैं, साथ मिलकर बैठते हैं और एक-दूसरे की मुलाक़ात को जाते हैं।" (हदीस : बैहक़ी, मिशकात)

आपस में मुलाक़ात और मुहब्बत की इतनी ताकीद और इसके लिए इतने बड़े बदले की ख़ुशख़बरी सिर्फ़ इस वजह से नहीं कि यह मुहब्बत का लाज़िमी तक़ाज़ा है, या यह कि इससे मुहब्बत में बढ़ौत्तरी और इज़ाफ़ा होता है। बल्कि एक वजह यह भी है कि इनसान को सही राय पर क़ायम रखने के लिए यह ज़रूरी होता है कि उसके सच्चे दोस्त उसको सहारा देते हैं। और यह चीज़ मुलाक़ातों और बातचीतों से ही मुमकिन है। फिर यह कि इनसान मिलता तो ज़रूर ही रहता है। अगर उसकी मुलाक़ातें इसके पूरे बदले और

सवाब की तमन्ना से अपने उन भाइयों से होंगी जो उसके मक़सद में साथ हैं और अगर इन मुलाक़ातों में अल्लाह को याद रखा जाए तो ये मुलाक़ातें ही उसकी सीरत (जीवन-चरित्र) के बनाने और किरदार की बढ़ौत्तरी में बड़ा अहम और नुमायाँ रोल अदा करेंगी।

इन हदीसों और दलीलों को सामने रखते हुए कहा जा सकता है कि एक सच्चे ईमानवाले को अपने दूसरे सच्चे मुस्लिम भाई से ज़्यादा मुलाक़ात की कोशिश करनी चाहिए सिवाय इसके कि कोई मजबूरी हो। इससे न सिर्फ़ यह कि ताल्लुक़ात बढ़ेंगे, बल्कि वे सत्तर हज़ार फ़रिश्तों की मग़फ़िरत (नजात) की दुआओं और अल्लाह की मुहब्बत का हक़दार हो जाएगा, और यह भी कि मुलाक़ात के वक़्त इन हदीसों और हिदायतों को सामने रखना चाहिए ताकि इस मुलाक़ात के अल्लाह के लिए होने का शुऊर ज़ेहन से ग़ायब न हो जाए।

इयादत या बीमारपुर्सी

मुलाक़ात की एक ख़ास सूरत जिसको एक मुसलमान पर उसके भाई का हक़ ठहरा दिया गया है, यह है कि वह अपने बीमार भाई की बीमारपुर्सी करने को जाए। एक बीमार इनसान अपनी ज़ेहनी और जिस्मानी हालत की बिना पर दूसरों की हमदर्दी और ख़िदमत का मुहताज होता है। और उस मौक़े पर उसका कोई भाई ये चीज़ें उसको मुहैया करके दे तो यह हमदर्दी और ख़िदमत एक ऐसा गहरा असर दिल पर छोड़ती है जो ताल्लुक़ात के मज़बूत होने में बहुत फ़ायदेमन्द होती है।

आम तौर से इयादत के मानी सिर्फ़ इतने समझे जाते हैं कि बीमार का हाल पूछ लिया जाए। लेकिन सच्ची बात यह है कि बीमारपुर्सी इसकी कम-से-कम क़िस्म है वरना ग़मख़ारी, तीमारदारी और ख़िदमत करना भी इसके तहत आते हैं। फिर अगर यह मान भी लिया जाए कि इयादत से मुराद सिर्फ़ मिज़ाजपुर्सी है तो सोचना चाहिए कि जब मिज़ाजपुर्सी की इतनी ताकीद और इतना बड़ा बदला है तो ग़मख़ारी, तसल्ली, तशफ़्फ़ी और बीमारपुर्सी का क्या दर्जा होगा।

एक मुसलमान के दूसरे मुसलमान के ऊपर हक़ों की जो मशहूर हदीसें हैं और जिनमें पाँच या छह या सात बातें बयान की गई हैं उनमें से हर एक में इयादत की एक हक़ के तौर पर ताकीद की गई है—

"जब वह बीमार पड़े तो उसकी इयादत करो।"

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने बहुत ही असरदार अन्दाज़ में बन्दों के हक़ों की हिदायत करते हुए एक बार इसकी वज़ाहत की कि ये हक़ अस्ल में अल्लाह की तरफ़ से लागू होते हैं और अल्लाह क़ियामत के दिन खुद दावेदार बनकर उनके बारे में जवाब तलब करेगा। इसी लिए इयादत के बारे में नबी (सल्ल॰) ने बताया कि अल्लाह तआला पूछेगा, "ऐ आदम के बेटे! मैं बीमार पड़ा तूने मेरी बीमारपुर्सी नहीं की?" वह कहेगा, "ऐ मेरे पालनहार! तू सारे जहानों का रब है। मैं तेरी इयादत कैसे करता!" अल्लाह फ़रमाएगा, "क्या तुझे ख़बर न हुई कि मेरा बन्दा बीमार हुआ, मगर तूने उसकी बीमारपुर्सी न की, अगर करता तो मुझे उसके पास पाता।" एक बीमार की इयादत के लिए इससे बढ़कर और क्या तरग़ीब (प्रेरणा) हो सकती है कि बन्दा इसके ज़रिए से अपने मालिक को पा सकेगा।

इस इयादत व बीमारपुर्सी के सवाब के बारे में अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने यह फ़रमाया—

> "जब मुसलमान अपने मुसलमान भाई की बीमारपुर्सी करने को जाता है तो वापसी तक जन्नत के मेवे चुनता रहता है।"
>
> (हदीस : अहमद, तिरमिज़ी)

और आगे यह फ़रमाया—

> "जब मुसलमान दूसरे मुसलमान की बीमारपुर्सी सुबह को करता है तो सत्तर हज़ार फ़रिश्ते उसके लिए दुआ करते हैं, यहाँ तक कि शाम हो जाए और अगर शाम को इयादत करता है तो सत्तर हज़ार फ़रिश्ते उसके लिए दुआ करते हैं, यहाँ तक कि सुबह हो जाए। उसके लिए जन्नत में मेवों के बाग़ हैं।"
>
> (हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, मिशकात)

"और फिर यह कि जो आदमी मरीज़ की बीमारपुर्सी को जाता है वह रहमत (दयालुता) के दरिया में दाख़िल हो जाता है और जब बीमार के पास बैठता है तो रहमत में डूब जाता है।"

(हदीस : मालिक, अहमद, मिशकात)

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"मरीज़ की इयादत की तकमील यह है कि बीमारपुर्सी करनेवाला अपना हाथ उसके हाथ या पेशानी (माथे) पर रख दे और उससे पूछे कि वह कैसा है।" (हदीस : अहमद, तिरमिज़ी)

बीमारपुर्सी के कुछ आदाब हैं। इसमें सबसे अहम चीज़ मरीज़ को तसल्ली, तशफ़्फ़ी और दिलासा देना है।

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने इसका हुक्म यूँ दिया है—

"जब तुम किसी बीमार के पास जाओ तो उसको दिलासा दो और तसल्ली दो। यह अगरचे अल्लाह के हुक्म को तो नहीं रोक सकती, लेकिन मरीज़ के दिल को ख़ुश कर देती है।"

(हदीस : तिरमिज़ी, इब्ने-माजा, मिशकात)

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ख़ुद जब किसी की इयादत या बीमारपूर्सी को जाते तो मरीज़ की पेशानी पर हाथ रखते, तसल्ली देते और कहते, "कोई बात नहीं है, अल्लाह ने चाहा तो ज़रूर अच्छे हो जाओगे", और फिर उससे पूछते कि किसी ख़ास चीज़ को उसका दिल चाहता है? सहाबा (रज़ि॰) से आप (सल्ल॰) यह कहते कि जब कोई किसी की बीमारपुर्सी के लिए जाए तो उसके हाथ और पेशानी पर हाथ रखे और उसको तसल्ली दे और उसके शिफ़ा (सेहत) पाने के लिए ख़ुद उसे दुआ दे।

(हदीस : अबू-दाऊद, सीरतुन्नबी (सल्ल॰) जिल्द-6, पेज-309)

फिर इससे भी मना किया कि बीमार के पास ज़्यादा देर तक बैठा जाए या शोर-गुल किया जाए।

जज़बात का इज़हार

दिल में अगर प्यार की भावनाएँ (जज़बात) हों तो ख़ुद-ब-ख़ुद ही अपने

ज़ाहिर होने का तक़ाज़ा करती हैं। जज़बात के इज़हार से हमेशा दो फ़ायदे होते हैं। एक तो यह कि जो आदमी अपने जज़बात को फूट निकलने का मौक़ा देता है उसके जज़बात में हमेशा ताज़गी रहती है, गर्मी रहती है और उनमें बढ़ौत्तरी होती रहती है, और अगर जज़बात को सीने में दफ़न करके रख दिया जाए तो घुट-घुटकर उनमें मुर्दनी छा जाती है। तरक़्क़ी रुक जाती है। इनसान ख़ुशी और ताज़गी से महरूम हो जाता है और इस तरह धीरे-धीरे वह पतन की तरफ़ जाने लगता है। जज़बात के इज़हार का दूसरा फ़ायदा यह होता है कि इससे आपसी ताल्लुक़ात ज़्यादा मज़बूत व पाएदार बनते हैं। जब एक आदमी इस कैफ़ियत से आगाह होगा जो उसके लिए उसके भाई के दिल पर छाई हुई है और जब उसे यह मालूम होता है कि उसका भाई अपने सीने में उसके लिए कितने प्यार-मुहब्बत और भाईचारे के जज़बात रखता है तो लाज़िमन उसके दिल पर गहरा असर पैदा होगा, अपने भाई के जज़बात में उलफ़त और मुहब्बत की क़द्र पैदा होगी और ख़ुद उसके दिली जज़बात का इज़हार न हो तो फिर दो भाई अच्छे जज़बात रखने के बावजूद कभी-कभी प्यार-मुहब्बत और लगाव के ज़्यादा पाएदार और मज़बूत ताल्लुक़ात न क़ायम रख सकेंगे।

फिर अगर एक मुसलमान से उसका भाई मुहब्बत रखता है तो उसका यह हक़ है कि वह अपने भाई के दिली जज़बात से आगाह हो। इसलिए भी कि वह उन जज़बात के जवाब में अपने सीने में बराबर के जज़बात परवान चढ़ा सके और इसलिए भी कि वह अनजाने में ऐसा रवैया न अपनाए जो उस मुहब्बत भरे जज़बात के तक़ाज़ों (माँगों) से टकराता हो या उनके मुताबिक़ न हो जो उसके भाई के सीने में उसके लिए मौजूद है।

इसलिए दो मुसलमान भाइयों की आपसी मुहब्बत को परवान चढ़ाने के लिए बल्कि अगर यह कहा जाए तो ग़लत न होगा कि ज़्यादातर हालतों में फ़साद से बचने के लिए यह ज़रूरी है कि मुहब्बत और प्यार को छिपाकर न रखा जाए और अपने जज़बात को खुलकर ज़ाहिर होने दिया जाए। फ़साद और बिगाड़ इस तरह पैदा होता है कि एक आदमी अपने भाई से मुहब्बत रखता है और वह अपनी मुहब्बत को अलग-अलग तरीक़ों से ज़ाहिर करता

है, लेकिन उसका भाई अपने दिल में मुहब्बत रखने के बावजूद "टक-टक दीदम दम न कशीदम" की मूर्ती बना रहे और होंठ सिले रहें तो ज़रूर ही वह इस तरह अपने भाई के दिल में बदगुमानी, बददिली और दूरी पैदा कर देगा जो उसे अपनी मुहब्बत की ख़बर दे देता है।

दिल में छिपे मुहब्बत, उलफ़त और प्यार के जज़बात जब फूटकर बाहर निकलते हैं तो वे बेशुमार रास्ते इख़्तियार करते हैं। इनसान की एक-एक हरकत और काम उसके भाई पर उसके जज़बात का इज़हार करता है। यह इज़हार अमल से भी होता है और ज़बान से भी। अच्छा सुलूक, ज़रूरत पूरी कर देना और दिलसोज़ी के साथ उसकी इसलाह व सुधार की कोशिश करना, उसको खाने की दावत देना, नर्मदिली, मुस्कुराहट, गले लगाना, दुख-दर्द में शमिल होना और अपने निजी मामलों में पूरा भरोसा कुछ ऐसे काम हैं जो उन जज़बात को ज़ाहिर करते हैं।

इनमें से कुछ पर हम बात कर चुके हैं और कुछ आगे चलकर करेंगे। हरकातो-सकनात (गतिविधियों) और अमल के साथ-साथ जो दूसरी बड़ी असरदार क़ुव्वत है वह ज़बान है। ज़बान से निकली हुई एक दिल दुखानेवाली बात जिस तरह तीर की तरह दिल पर असर करती है, और उसके ज़ख़्म का भरना मुशकिल होता है, इसी तरह ज़बान से निकली हुई अच्छी बात दिल पर ऐसा गहरा असर छोड़ती है कि दूसरे इनसान के लिए इसका अन्दाज़ा भी मुशकिल होता है। इसलिए ज़बान के बारे में हमने देखा है कि अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल०) ने सबसे ज़्यादा चौकन्ना रहने का मशवरा दिया है। इसलिए कि यही ज़बान ताल्लुक़ात में ख़लल डालने और फ़साद व बिगाड़ की अथाह गहराइयों तक पहुँचाने का सबब बन सकती है। अगर एक इनसान इससे अच्छे और सही क़िस्म का काम ले तो यह आपसी ताल्लुक़ात को उलफ़त व मुहब्बत की सबसे बुलन्द मंज़िलों तक पहुँचा सकती है। इसका अन्दाज़ा बहुत कम लोग करते हैं। अकसर ज़बान से निकले हुए कुछ लफ़्ज़ जो दूसरे इनसान तक प्यार-मुहब्बत के जज़बात पहुँचा रहे हों, इनसानी दिल को कितना ख़ुश कर देते हैं। कभी-कभी तो अच्छे-से-अच्छा सुलूक और बरताव भी इसकी बराबरी नहीं कर सकता। और कितने ही लोग

जो एक अच्छी बात, हिम्मत बढ़ानेवाले जुमले, दिल को खुश कर देनेवाली बात बोल देने में कंजूसी कर जाते हैं और इस तरह न सिर्फ़ यह कि वे अपने भाई के दिल को बेहद खुश करने की खुशक़िस्मती से महरूम (वंचित) हो जाते हैं जिसके बारे में यह है कि "जिसने मुसलमान भाई के दिल को खुश किया उसने अल्लाह के नबी (सल्ल०) को खुश किया और जिसने अल्लाह के नबी (सल्ल०) को खुश किया उसने अल्लाह को खुश किया और जिसने अल्लाह को खुश कर दिया तो अल्लाह उसे जन्नत में दाख़िल कर देगा।" बल्कि इसके बरख़िलाफ़ कभी-कभी तो मुहब्बत भरी बात न कहकर उसके दिल को दुख-तकलीफ़ पहुँचा देते हैं और कभी-कभी किसी जुमले को लापरवाही और बेपरवाही से बोल देते हैं। इसके बारे में आया है कि "जिसने किसी मुसलमान को सताया उसने अल्लाह को सताया।"

ज़बान के ज़रिए से जज़बात के इज़हार के तरीक़ों में अपनी मुहब्बत का इज़हार, सलाम-दुआ, नर्म और प्यार भरे जुमले, हमदर्दी वग़ैरा कई चीज़ें आती हैं। ज़बान की अहमियत को सामने रखते हुए नबी (सल्ल०) ने अपने सहाबा (रज़ि०) के सामने क़ियामत के दिन का नक़्शा पेश किया—

> "जब आदमी के चारों तरफ़ आग-ही-आग या फिर उसके आमाल (कर्म) होंगे उस वक़्त अल्लाह खुद हिसाब-किताब करेगा—फिर हिदायत की कि उस आग से बचो अगरचे खजूर का एक टुकड़ा ही देकर क्यों न हो और यह भी मुमकिन न हो तो कम-से-कम भली बात ही कहो।"

और फिर सारी दलीलों को सामने रखते हुए और सभी पहलुओं पर सोच-विचार करने के बाद हम बड़ी आसानी के साथ समझ सकते हैं कि अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल०) ने इस सिलसिले में क्या हिदायतें दी हैं और क्यों दी हैं। प्यार-मुहब्बत के इज़हार के सिलसिले में नबी (सल्ल०) ने यह कहा—

> "जब कोई अपने भाई से मुहब्बत करे तो उसको चाहिए कि वह उसे ख़बर कर दे कि वह उससे मुहब्बत रखता है।"
>
> (हदीस : अबू-दाऊद, तिरमिज़ी)

और इसी तरह एक बार नबी (सल्ल॰) के सामने से एक आदमी गुज़रा। उस वक़्त आप (सल्ल॰) के पास लोग बैठे हुए थे। उन लोगों में से एक ने कहा कि मैं उस आदमी को अल्लाह के लिए महबूब रखता हूँ।

> नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "क्या तूने उसको इस बारे में बताया है?" उसने कहा, "नहीं"। आप (सल्ल॰) ने कहा, "जाओ और उसको बता दो कि तुम उससे अल्लाह के लिए मुहब्बत करते हो", फिर वह खड़ा हो गया और उसको जाकर बता दिया। उसने कहा, "तुझसे वह महान हस्ती मुहब्बत करे जिसकी खुशनूदी की ख़ातिर तू मुझसे मुहब्बत करता है।"
>
> (हदीस : बैहक़ी, तिरमिज़ी, मिशकात)

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) एक बार का वाक़िआ बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने हज़रत हसन-बिन-अली (रज़ि॰) का बोसा (चुम्मा) लिया। उस वक़्त आप (सल्ल॰) के पास अक़रअ-बिन-हाबिस (रज़ि॰) बैठे हुए थे, उन्होंने आप (सल्ल॰) को बोसा लेते देखकर कहा कि मेरे दस बेटे हैं, मैंने उनमें से कभी किसी का बोसा नहीं लिया। नबी (सल्ल॰) ने उनकी तरफ़ देखकर कहा, "जो रहमत (दयालुता) से ख़ाली होता है उसपर रहमत नहीं की जाती।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

एक दूसरी हदीस में दूसरी तरह के अलफ़ाज़ हैं, "अगर अल्लाह ने तुम्हें रहमत से महरूम (वंचित) कर दिया है तो मैं क्या करूँ।" जज़बात (भावनाओं) के इज़हार का बेहतरीन मौक़ा मुलाक़ात के वक़्त होता है। ख़ुद मुलाक़ात की ज़रूरत और अहमियत तो आपको मालूम है। आइए देखें कि जज़बात के इज़हार के लिए मुलाक़ात को कैसा होना चाहिए।

मुहब्बत और अच्छे अख़लाक़ के साथ मुलाक़ात करना

ताल्लुक़ात को परवान चढ़ाने में अच्छे सुलूक के बाद अगर कोई चीज़ सबसे ज़्यादा असरदार है तो वह मुलाक़ात है, लेकिन ख़ास बात यह है कि इन मुलाक़ातों में एक तरफ़ तो बदकलामी, तान व तंज़, हँसी-मज़ाक़ वग़ैरा ऐबों के ज़िक्र से दिल दुखाना न हो और दूसरी यह कि इस तरह मिला जाए

कि मुलाक़ात के अन्दाज़ से मुहब्बत के जज़बात टपकते हों। इस बारे में हमको बहुत-सी हदीसें मिलती हैं।

एक सूरत यह है कि मुलाक़ात में सख़्ती या बेनियाज़ी व लापरवाही के बजाए, जो दिल के लिए दुखदाई और दिल को फाड़नेवाली होती है, नर्मी और मुहब्बत हो। नर्मदिल आदमी के बारे में नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"मैं तुम्हें उस आदमी का पता देता हूँ जिसपर जहन्नम की आग हराम है और वह आग पर हराम है। यह वह आदमी है जो नर्म मिज़ाज, नर्मदिल, लोगों के क़रीब हो और जिससे मिलना आसान हो।" (हदीस : अहमद, तिरमिज़ी, मिशकात)

इसकी एक सूरत यह भी है कि आदमी प्रेम-भाव से मिले और देखकर मुस्कुरा दे। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने इन दोनों चीज़ों की नसीहत की है।

एक बार नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"नेकियों में से किसी को हक़ीर (तुच्छ) न समझो भले ही वह इतनी हो कि तुम अपने भाई से ख़ुशी के साथ मुस्कुराते हुए मिलो।"
(हदीस : मुस्लिम)

एक और जगह नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"अपने भाई को देखकर मुस्कुरा देना भी सदक़ा (नेकी) है।"

लापरवाही और बेनियाज़ी से न मिले, बल्कि बड़े ध्यान के साथ मिले और दूसरे पर इसका इज़हार कर दे कि यह मुलाक़ात उसके दिल की ख़ुशी का सबब हो रही है।

प्यारे नबी (सल्ल॰) के बारे में सहाबा (रज़ि॰) यह कहते हैं कि आप (सल्ल॰) किसी की तरफ़ ध्यान देते तो पूरे तन-मन से देते। इसी तरह आप (सल्ल॰) के बारे में एक वाक़िआ बैहक़ी ने नक़्ल किया है कि नबी (सल्ल॰) मस्जिद में एक मजलिस में बैठे थे। एक आदमी आया तो नबी (सल्ल॰) उसके लिए थोड़ा खिसक गए। उसने कहा, ऐ अल्लाह के रसूल! जगह में काफ़ी गुंजाइश है। आप (सल्ल॰) ने कहा—

"मुसलमान का यह हक़ है कि जब उसका भाई उसे देखे तो उसके

लिए जगह बनाए।" (हदीस : तर्जमानुस्सुन्नह्)

हज़रत आइशा (रज़ि॰) बयान करती हैं, "जब ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि॰) मदीना में आए और नबी (सल्ल॰) से मुलाक़ात के लिए बाहर से दरवाज़ा खटखटाया तो नबी (सल्ल॰) तहमद बाँधे बग़ैर सिर्फ़ चादर को खींचते हुए बाहर निकल गए। ख़ुदा की क़सम, मैंने इससे पहले और न इसके बाद आप (सल्ल॰) को इस हालत में देखा। आप (सल्ल॰) ने मुहब्बत के जोश में ज़ैद (रज़ि॰) को गले लगाया और चूमा।" इसी तरह जब हज़रत जाफ़र तय्यार (रज़ि॰) हबशा से वापस आए तो नबी (सल्ल॰) ने उनको गले गलाकर आँखों के बीच चूमा। हज़रत इकरिमा-बिन-अबू-जह्ल (रज़ि॰) जब आप (सल्ल॰) की ख़िदमत में हाज़िर हुए तो आप (सल्ल॰) ने कहा, "हिजरत करनेवाले सवार का स्वागत है।"

सलाम

सलाम के ज़रिए से जज़बात के इज़हार को एक ख़ास और मुतैयन सूरत देकर इसे भी एक मुसलमान के दूसरे मुसलमान पर अधिकारों और हक़ों में शामिल कर दिया है। इसमें एक तरफ़ जज़बात का इज़हार होता है और दूसरी तरफ़ अपने भाई के लिए दुआ के ज़रिए से ख़ैरख़ाही भी। जब नबी (सल्ल॰) ने मदीना आकर पहला ख़ुतबा (भाषण) दिया तो चार बातों की हिदायत की और उनमें से एक यह थी—

"सलाम को फैलाओ।"

इससे भी अधिक अहमियत इस हदीस से ज़ाहिर होती है। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने कहा—

> "तुम हरगिज़ जन्नत में दाख़िल न होगे यहाँ तक कि ईमानवाले न हो जाओ, और ईमानवाले उस वक़्त तक न होगे जब तक आपस में मुहब्बत न करने लगो। क्या मैं तुम्हें ऐसी चीज़ का पता न दूँ कि उसको अपनाकर तुम आपस में मुहब्बत करने लगो—वह यह कि सलाम को (आपस में) फैलाओ।" (हदीस : मिशकात)

एक बार मुसलमान पर मुसलमान के छह हुक़ूक़ बताते हुए नबी (सल्ल॰)

ने फ़रमाया—

> "उससे (यानी मुसलमान भाई से) सलाम करे जब भी उससे मिले।" (हदीस : मिशकात)

इस बारे में ख़ास तौर पर सलाम में आगे बढ़ने और पहल करने का सवाब और नेकी हासिल करने पर उभारा गया है। अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "सलाम में पहल करनेवाला घमण्ड से पाक होता है।"

नबी (सल्ल॰) ने यह भी फ़रमाया—

> "अल्लाह की रहमत (दयालुता) से ज़्यादा क़रीब लोगों में वह है जो सलाम में पहल करे।" (हदीस : तिरमिज़ी, मिशकात)

और ज़ाहिर है कि प्यार-मुहब्बत का तक़ाज़ा यह है कि इनसान आगे बढ़कर अपने भाई के लिए दुआ करे और इस तरह अपने जज़बात को ज़ाहिर करे। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) जहाँ से भी गुज़रते वहाँ सलाम में पहल करते, चाहे वह कोई भी हो। मर्द हो या औरत या बच्चे। बल्कि बच्चों को सलाम करने में आप (सल्ल॰) ख़ास तौर पर पहल करते। ज़्यादा और बार-बार सलाम करने की आप (सल्ल॰) ने इस तरह नसीहत की—

> "जब तुममें से कोई अपने भाई से मिले तो उसे सलाम करे। फिर अगर उन दोनों के बीच कोई पेड़, दीवार, पत्थर या कोई आड़ आ जाए और फिर मिले तो फिर सलाम करे।"
>
> (हदीस : अबू-दाऊद, मिशकात)

ख़ास तौर पर नबी (सल्ल॰) ने घरवालों पर सलाम की नसीहत की और हज़रत अनस (रज़ि॰) से कहा—

> "ऐ बेटे! जब तू अपने घर में दाख़िल हो तो सलाम कर। यह तेरे और तेरे घरवालों के लिए बरकत का सबब होगा।"
>
> (हदीस : तिरमिज़ी, मिशकात)

सलाम के ज़रिए से प्यार-मुहब्बत में बढ़ौत्तरी उस वक़्त हो सकती है जब सही शुऊर (विवेक) के साथ हो। एक भाई दूसरे भाई के लिए सलामती की

दुआ कर रहा हो और उसपर ज़ाहिर कर रहा हो कि वह प्यार-मुहब्बत और ख़ैरख़ाही के लिए कितने जज़बात दिल में रखता है। वरना जैसा सलाम आजकल राइज है आदत के तौर पर दो लफ़्ज़ मुँह से निकल जाते हैं तो साफ़ ज़ाहिर है कि यह प्यार-मुहब्बत में बढ़ौत्तरी का सबब नहीं बन सकता।

हाथ मिलाना (मुसाफ़हा)

सलाम के बाद दूसरी चीज़ जो मुलाक़ात के वक़्त अपनी मुहब्बत भरे जज़बात के इज़हार के लिए अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने बताई वह एक-दूसरे से हाथ मिलाना है। हज़रत अनस (रज़ि॰) से पूछा गया कि क्या नबी (सल्ल॰) के प्यारे साथियों (रज़ि॰) में मुसाफ़हा (हाथ मिलाने) का चलन था? उन्होंने कहा, "हाँ"। (हदीस : बुख़ारी, मिशकात)

अस्ल में एक-दूसरे से हाथ मिलाना सलाम के पूरे हो जाने की हैसियत रखता है। यानी सलाम की पूरी स्प्रिट इससे ही मुकम्मल होती है। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने ख़ुद इस चीज़ को वाज़ेह किया है—

> "तुम्हारे आपसी सलाम की तकमील (पूर्णता) हाथ मिलाने से होती है।" (हदीस : अहमद, तिरमिज़ी, मिशकात)

हाथ मिलाने के बारे में नबी (सल्ल॰) ने यह भी कहा, "हाथ मिलाया करो, इसलिए कि इससे कीना और नफ़रत दूर होती है।" (हदीस : मालिक)

और हाथ मिलाने के सवाब के बारे में जो ख़ुशख़बरी अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने दी है वह यह है—

> "जब दो मुसलमान मिलें और आपस में हाथ मिलाएँ तो उनके जुदा होने से पहले ही उनको बख़्श दिया जाता है। एक हदीस में यह है कि हाथ मिलाएँ। ख़ुदा की बड़ाई बयान करें और उससे माफ़ी चाहें तो उनको बख़्श दिया जाता है।"
>
> (हदीस : अहमद, तिरमिज़ी, इब्ने-माजा, अबू-दाऊद, मिशकात)

अच्छे नाम से याद करना

जो शख़्स भी इनसान की नफ़सियात (मानसिकता) से वाक़िफ़ है वह

जानता है कि इनसान की फ़ितरी ख़ाहिश होती है कि उसको बेहतर-से-बेहतर अन्दाज़ में पुकारा जाए और जितने प्यार भरे लहजे और मन-मोहक अन्दाज़ में उसे समझाया जाएगा उतना ही उसका दिल पुकारनेवाले की मुहब्बत और ख़ुलूस से मुतास्सिर होगा। इस मामले में कभी कंजूसी नहीं करनी चाहिए, बल्कि इस बात की पूरी कोशिश करनी चाहिए कि आदमी अपने भाई को ऐसे अन्दाज़ से पुकारे जिससे उसके मुहब्बत के जज़बात छलकते हों। सैयद अहमद शहीद (रह.) की तहरीक (आन्दोलन) का हर आदमी अपने बराबरवालों और बड़ों को उनके नाम के साथ भाई लगाकर पुकारता था और छोटों का सिर्फ़ नाम लिया जाता था। यह मामला इस तरह पुकारने का है जिससे मुहब्बत छलकती है और जिससे दूसरे का दिल ख़ुश हो। इसकी तो एक पुर-ख़ुलूस और प्यार भरे ताल्लुक़ात में गुंजाइश ही नहीं कि भाई अपने भाई को इस तरह पुकारे जो उसको नागवार हो। अच्छे अन्दाज़ से बात करने की जितनी भी हदीसें हैं उनका मतलब यही है कि लोगों को अच्छे नामों से पुकारा जाए। हज़रत उमर (रज़ि.) ने कितनी सही बात कही जबकि उन्होंने यह बताते हुए कि दोस्ती किन चीज़ों से मज़बूत होती, कहा, "दोस्त को अच्छे नाम से बुलाइए।" (कीमिया-ए-सआदत, पेज-238)

निजी और ज़ाती मामलों में दिलचस्पी

दिली और सच्ची मुहब्बत का यह एक हक़ है कि आदमी अपने भाई के निजी और ज़ाती मामलों में उतनी ही दिलचस्पी ले जितनी वह अपने ज़ाती और निजी मामलों में लेता है। जब मिले तो उसके ज़ाती हालात पूछे। उनमें पूरी-पूरी दिलचस्पी का इज़हार करे। इस तरह एक तरफ़ तो एक भाई को दूसरे भाई की ख़ैरख़ाही का यक़ीन होगा, दूसरे यह कि एक भाई के जज़बात दूसरे पर ज़ाहिर होंगे और यह चीज़ ताल्लुक़ात की मज़बूती का सबब बनेगी।

अल्लाह के नबी (सल्ल.) ने अपने प्यारे साथियों (रज़ि.) को आपस में ज़ाती और निजी तौर पर तफ़सीली परिचय कराने की हिदायत करते हुए इस मस्लहत पर भी रौशनी डाली। आप (सल्ल.) ने फ़रमाया—

"जब एक आदमी दूसरे आदमी से भाईचारा करे तो उससे उसका

नाम, उसके बाप का नाम और उसके क़बीले का नाम पूछ ले, इसलिए कि इससे आपसी प्यार-मुहब्बत की जड़ें मज़बूत होती हैं।"

(हदीस : तिरमिज़ी, मिशकात)

ज़ाती नाम वग़ैरा ऐसी चीज़ें हैं जो आदमी के निजी मामलों का ही एक हिस्सा हैं और इस तरह यह हदीस उस उसूल की तरफ़ इशारा करती है जिसको मैंने पेश किया। फिर यह कहना कि इससे 'मुहब्बत की जड़ें मज़बूत होती हैं' अस्ल हिकमत और मक़सद पर भी रौशनी डालते हैं।

तोहफ़े

अपने भाई पर अपनी मुहब्बत और ख़ुलूस के साथ इज़हार के लिए तोहफ़े देना ताल्लुक़ात को मज़बूत बनाने के लिए बहुत ही असरदार चीज़ है। अच्छी बात कहना, अच्छे नाम से पुकारना, अपनी मुहब्बत ज़ाहिर करना, ये सब ज़बान के तोहफ़े हैं जिनके ज़रिए से एक भाई अपने भाई पर प्यार-मुहब्बत ज़ाहिर करके उसको अपने से क़रीब लाता है। ठीक जिस तरह ज़बान के तोहफ़े दिल को ख़ुश करते हैं और दिल को जोड़ने में और अपनी तरफ़ खींचने में मदद देते हैं, उसी तरह माद्दी चीज़ों की शक्ल में दिए गए तोहफ़े भी एक दिल को दूसरे दिल से जोड़ते हैं और इसी तरह आपसी प्यार-मुहब्बत में बढ़ोत्तरी होती है। नबी (सल्ल॰) ने जहाँ तोहफ़े देने के लिए उभारा है, वहीं इसका यह फ़ायदा भी बताया है कि यह दिलों की रंजिशों और दुश्मनियों को धो देता है। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

"एक-दूसरे को तोहफ़े भेजा करो तो आपस में प्यार-मुहब्बत पैदा होगी और दिलों की दूरी और दुश्मनी दूर हो जाएगी।"

(हदीस : मिशकात)

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ख़ुद अपने साथियों (रज़ि॰) को ख़ूब तोहफ़े देते और आप (सल्ल॰) के साथी (रज़ि॰) आप (सल्ल॰) की ख़िदमत में और आपस में एक-दूसरे को भी तोहफ़े पेश करते। इस बारे में जो बातें हमें अपने सामने रखनी चाहिएँ और जो हमें नबी (सल्ल॰) के आदर्श जीवन से मालूम होती हैं वे ये हैं—

1. तोहफ़े हमेशा अपनी ताक़त और हैसियत के हिसाब से देने चाहिएँ और इस बुनियाद पर देने से रुक न जाना चाहिए कि वह क़ीमती या हैसियत के मुताबिक़ चीज़ नहीं दे सकता। जो चीज़ दिलों को जोड़ती है वह तोहफ़े की क़ीमत और हैसियत नहीं होती, बल्कि देनेवाले का ख़ुलूस और उसकी मुहब्बत होती है।

2. तोहफ़ा चाहे कुछ भी हो हमेशा शुक्र और एहसान के जज़बात के साथ क़बूल करना चाहिए।

3. तोहफ़े के बदले हमेशा तोहफ़ा देने की कोशिश करनी चाहिए। यह ज़रूरी नहीं कि वे बराबर हैसियत के तोहफ़े हों, बल्कि हर शख़्स अपनी हैसियत के मुताबिक़ दे। नबी (सल्ल॰) का यह उसूल था कि आप (सल्ल॰) हमेशा तोहफ़े के बदले की कोशिश करते। एक बार एक आदमी ने लेने से इनकार कर दिया तो आप (सल्ल॰) ने उसपर नाराज़गी का इज़हार किया।

4. तोहफ़े में सबसे पसन्दीदा चीज़ आप (सल्ल॰) के लिए ख़ुशबू थी। आज के हालात में किताब का तोहफ़ा भी दिया जा सकता है।

शुक्र अदा करना

मुहब्बत भरे जज़बात के इज़हार और दूसरे की मुहब्बत के एहसास को ज़ाहिर करने का यह एक बड़ा अच्छा तरीक़ा है। जब एक भाई यह महसूस करे कि उसका भाई मुहब्बत भरे जज़बात और मुहब्बत के तहत किए हुए कामों का पूरा-पूरा एहसास करता है और उनकी क़द्र व क़ीमत को महसूस करता है तो उसके दिली ताल्लुक़ात में बढ़ौत्तरी होती है। अगर प्यार-मुहब्बत करनेवाले आदमी को यह एहसास हो कि उसके ख़ुलूस और मुहब्बत की कोई क़द्र व क़ीमत नहीं तो उसका दिल बुझने लगता है। इसलिए जब भी एक मुसलमान दूसरे मुसलमान भाई की कोई मदद करे या उसके साथ अच्छा सुलूक और बरताव करे या उससे कोई अच्छी-भली बात कहे या उसको कोई तोहफ़ा दे तो उस मुसलमान भाई का फ़र्ज़ है कि वह इसपर अपनी ख़ुशी का इज़हार करते हुए उसका शुक्रिया अदा करे और इस तरह उसको यह बता दे कि वह ख़ुलूस और प्यार-मुहब्बत की हर अदा की क़द्र व क़ीमत

अपने दिल में ख़ूब महसूस कर रहा है। नबी (सल्ल॰) के बारे में प्यारे सहाबा (रज़ि॰) बयान करते हैं–

> "जब कोई नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में कोई चीज़ पेश करता तो नबी (सल्ल॰) उसका शुक्रिया अदा करते और उसको क़बूल कर लेते, और जब कोई आप (सल्ल॰) का काम कर देता तो उसपर अपने इत्मीनान का इज़हार करते।" (हदीस : शमाइले-तिरमिज़ी)

साथ मिलकर खाना

खाने में एक-दूसरे के साथ शामिल होना और एक-दूसरे को अपने घर खाना खाने की दावत देना भी ख़ुलूस और मुहब्बत भरे जज़बात के इज़हार का एक अमली तरीक़ा है। ऐसे मौक़ों पर न सिर्फ़ यह कि बे-तकल्लुफ़ी और खुले मन से बातचीत के मौक़े मिलते हैं, बल्कि जब एक मुसलमान भाई अपने भाई को अपने घर पर खाना खाने की दावत देता है तो जिस आदमी को बुलाया जाता है, उसके दिल में यह एहसास पैदा हो जाता है कि मेरा भाई मेरे लिए अपने दिल में जज़बात रखता है और यह एहसास जहाँ भी पैदा हो जाए वहाँ ताल्लुक़ात और ज़्यादा मज़बूत हो जाते हैं। सहाबा (रज़ि॰) आपस में भी एक-दूसरे को अकसर खाने पर बुलाते रहते थे और नबी (सल्ल॰) को भी अकसर दावत देते रहते थे। ख़ुद नबी (सल्ल॰) के पास खाने की कोई चीज़ होती या कहीं से आती तो आप (सल्ल॰) पूरी मजलिस को उसमें शामिल कर लेते। दावत और आपस में साथ मिलकर खाने में भी वे चीज़ें सामने रखना ज़रूरी हैं जो तोहफ़े के ताल्लुक़ से आ चुकी हैं। पहले यह कि दावत तरह-तरह के मज़ेदार खानों को ही नहीं कहते, बल्कि हर आदमी अपनी हैसियत के मुताबिक़ खिलाए, चाहे वह रोज़ाना का खाना हो, लेकिन इस सिलसिले में कुछ ख़ास किया जा सके तो यह चीज़ दिल पर अच्छा असर डालती है। जिस आदमी को दावत दी जाए, उसका फ़र्ज़ है कि उसको क़बूल करे और शुक्र, इत्मीनान और ख़ुशी के इज़हार के साथ क़बूल करे और आख़िरी यह कि तोहफ़े की तरह दावत के बदल की भी कोशिश करनी चाहिए।

इस सिलसिले में यह बात भी सामने रखनी चाहिए कि शुरू में

मुसलमानों के दिलों में अपने नाते-रिश्तेदारों के घरों में खाना खाने से झिझक और रुकावट पाई जाती थी। इस बारे में ख़ुद क़ुरआन मजीद में सूरा-24 नूर में अल्लाह तआला ने हिदायतें देकर इस झिझक को दूर किया और बे-तकल्लुफ़ी पैदा की।

दुआ

दुआ एक ऐसी चीज़ है जो एक तरफ़ तो बहुत से हक़ों को एक बिलकुल ख़ास पहलू से अपने अन्दर समेट लेती है, जिनपर हम बातचीत कर आए हैं। दूसरी तरफ़ एक नए पहलू से उलफ़त व मुहब्बत का सबब बनती है। दुआ में एक मुसलमान अपने भाई के लिए अपने रब से उसकी रहमत और मग़फ़िरत (क्षमायाचना) तलब करता है। उसकी भलाई की ख़ाहिश रखता है और उसके हालात सुधारने की दरख़ास्त करता है, और ज़ाहिर है कि हर मुसलमान इसपर पूरा यक़ीन रखता है कि मामलों की अस्ल कुंजी अल्लाह के हाथ में है और जब वह अपने भाई को देखता है कि वह उसके लिए अपने रब के आगे हाथ फैलाकर सवाल कर रहा है तो वह बहुत ही ज़्यादा मुतास्सिर होता है।

दुआ पीठ-पीछे भी होती है और आमने-सामने भी। दुआ की एक सूरत वह सलाम है जिसकी मुकम्मल सूरत में इनसान अपने भाई के लिए सलामती, रहमत और बरकत का तालिब (चाहनेवाला) होता है। फिर एक मुसलमान पर दूसरे मुसलमान का यह भी हक़ है कि अगर वह छींके और वह "अल-हम्दुलिल्लाह" (सारी तारीफ़ें अल्लाह के लिए हैं) कहे तो उसके लिए रहमत की दुआ की जाए यानी "यरहमुकल्लाह" (अल्लाह तुम पर रहम करे) कहा जाए फिर अपने मुसलमान भाई का जनाज़ा भी एक हक़ है और यह भी दुआ की एक सूरत है। इयादत (बीमारपुर्सी) का जो तरीक़ा नबी (सल्ल॰) से साबित है उसमें भी दुआ है।

दुआ अगर आमने-सामने हो या जिसके लिए दुआ की जाए, उसकी जानकारी में हो तो इसपर पहला नतीजा यह निकलकर आता है कि वह अपने भाई की दिली ख़ैरख़ाही और मुहब्बत का क़ायल हो जाता है। दोनों के नज़दीक अस्ल मक़सद बहरहाल अल्लाह की रहमत होती है और जब वह

देखता है कि मेरा भाई मेरे लिए न सिर्फ़ अमली तौर पर भलाई की कोशिश करता है, बल्कि मेरी ज़रूरतों को उसी तरह अल्लाह के सामने पेश करता है जिस तरह अपनी ज़रूरतें, फिर मेरे दुख-दर्द पर उसी तरह तड़पकर अपने मालिक के आगे हाथ फैलाता है जिस तरह अपने दुख-दर्द पर, मेरी कमियों और गुनाहों पर उसी तरह मग़फ़िरत तलब करता है जिस तरह अपने गुनाहों पर और मेरे लिए ख़ुदा की ख़ुशी और रहमत का उसी तरह तालिब होता है जिस तरह अपने लिए। फिर जब वह यह भी देखता है कि मेरा भाई इतना ख़याल रखता है कि अच्छे मौक़ों पर, अकेले में जब वह और सिर्फ़ उसका रब होता है, मैं उसे याद रहता हूँ, तो फिर उसके दिल में अपने लिए दुआ करनेवाले भाई की मुहब्बत पैदा होती है और इस तरह इस दुआ से पूरे फ़ायदे हासिल होते हैं जो जज़बात के इज़हार में होते हैं।

दूसरी तरफ़ दुआ करनेवाला जब कोशिश करके दूसरों को दुआ में शामिल रखता है तो उसके दिली ताल्लुक़ में बढ़ौत्तरी होती है और साथ ही ताल्लुक़ात में पाकीज़गी आती है।

मग़फ़िरत (क्षमायाचना), रहमत, हाजत-रवाई (ज़रूरत पूरी करने) और कठिनाइयों को दूर करने की दुआ के साथ अपने भाई के लिए सच्चे रास्ते पर जमे रहने की दुआ और आपसी मुहब्बत की भी नसीहत की गई है।

> "ऐ अल्लाह! हमारे दिलों को जोड़ दे और हमारे ताल्लुक़ात में सुधार पैदा कर दे।"

इसी तरह दिलों में नागवारी, गुबार, या कुदूरत व रंजिश के दूर होने की दुआ की भी नसीहत की गई है। इसलिए कि दिलों में एक-दूसरे की तरफ़ से कुदूरत, कीना या शिकायत ऐसी बीमारी है जिसके लिए गिड़गिड़ाकर दुआ माँगनी चाहिए। क़ुरआन में ऐसे नेक लोगों की यह दुआ बयान हुई है—

> "ऐ हमारे रब! हमको और हमारे उन सब भाइयों को बख़्श दे जो ईमान में हमसे आगे बढ़ गए हैं। और हमारे दिलों में एक-दूसरे की तरफ़ से कीना न रहने दे।" (क़ुरआन, सूरा-59 हश्र, आयत-10)

अगर अपने भाई का नाम लेकर या उसका ख़याल करके दुआ की जाए तो इससे और ज़्यादा ताल्लुक़ात बढ़ते हैं। ख़ुद अपने तौर पर अपने भाई के

लिए रहमत की दुआ करना, अल्लाह से उसके प्यार-मुहब्बत और लगाव का सवाल करना और ताल्लुक़ात को ख़राबी से बचाने के लिए गिड़गिड़ाना तो एक मुसलमान का दूसरे मुसलमान पर हक़ है। लेकिन एक-दूसरे से अपने लिए दुआ की दरख़ास्त करना और दुआओं में शामिल रखने की तमन्ना का इज़हार भी ताल्लुक़ात के लिए फ़ायदेमन्द होता है।

मिसाल के तौर पर नबी (सल्ल०) ने यह कहा कि "जब अपने बीमार भाई के पास बीमारपुर्सी के लिए जाओ तो उससे भी अपने लिए दुआ कराओ, इसलिए कि उसकी दुआ ज़्यादा क़बूल होती है।"

इसी तरह जब हज़रत उमर (रज़ि०) हज को जा रहे थे तो नबी (सल्ल०) ने कुछ अलफ़ाज़ (शब्द) कहे जिनके बारे में उनका कहना यह है कि "ये मुझे अपनी पूरी ज़िन्दगी में सबसे ज़्यादा अज़ीज़ (प्रिय) हैं।" और वे शब्द ये हैं—"ऐ हमारे भाई! हमें अपनी दुआओं में याद रखना।"

बेहतरीन तरीक़े से जवाब देना

एक मुसलमान की यह कोशिश होनी चाहिए कि वह अपने मुसलमान भाई की मुहब्बत और खुलूस का जवाब उससे ज़्यादा और बेहतर खुलूस और मुहब्बत से दे। इसलिए भी कि कोई ताल्लुक़ एक तरफ़ा प्यार-मुहब्बत से परवान नहीं चढ़ सकता और इसलिए भी कि इस तरह दूसरे भाई का दिल मुत्मइन रहता है कि उसकी मुहब्बत न तो बरबाद की जा रही है और न उसकी नाक़द्री हो रही है। सलाम का जवाब बेहतर सलाम से देने, तोहफ़े का जवाब बेहतर तोहफ़े से देने और अच्छी बात का जवाब एक अच्छी बात से देने की हिदायत इस उसूल पर रौशनी डालती है। इस बारे में अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल०) की यह हदीस भी सामने रखनी चाहिए—

> "दो मुहब्बत करनेवालों में बेहतर वह है जो अपने भाई के लिए ज़्यादा मुहब्बत करे।"

अगर अपने भाई की मुहब्बत के जवाब में बेहतर जवाब मुमकिन न हो तो कम-से-कम बराबर का ही जवाब होना चाहिए और साथ ही अपनी कोताही को मान लेना भी दिल को मुतास्सिर करता है।

मेल-मिलाप करना और शिकायत दूर करना

ताल्लुक़ात की बुनियाद को ज़ेहन में रखने और उन सारी तदबीरों और तरीक़ों को अपनाने में जो एक तरफ़ ताल्लुक़ात को ख़राब होने से बचाते हैं और दूसरी तरफ़ उनमें उलफ़त और मुहब्बत के जज़बात पैदा करते हैं, बहुत-सी कोताहियाँ और ख़ामियाँ हो जाती हैं। किसी इनसान के लिए भी यह मुमकिन नहीं कि उससे कभी भी किसी ग़लती का न होना नामुमकिन हो। फिर अच्छे ताल्लुक़ात चूँकि इस्लामी इंक़िलाब के लिए ज़रूरी हैं, इस वजह से शैतान भी इस मोर्चे पर बड़ा सरगर्म रहता है और लगातार उन ताल्लुक़ात को ख़राब करने और उनमें बिगाड़ पैदा करने की कोशिश में लगा रहता है। ताल्लुक़ात के बारे में जो बातें कही गई हैं, उनको हमेशा सामने रखा जाए और उस उसूल पर हमेशा अपने-आपको परखा जाए कि अपने भाई को अपनी तरफ़ से कोई जिस्मानी कष्ट या दिली तकलीफ़ न होने दे। चाहे यह दिल दुखाना ज़बान से हो या अमल से। हर वह तरीक़ा अपनाने की कोशिश करो जिससे तुम अपने भाई की मदद कर सको, चाहे दीनी मदद हो या दुनियावी। अपने ख़ुलूस और मुहब्बत को पूरी तरह ज़ाहिर करो और दूसरे के ख़ुलूस और मुहब्बत के जवाब में उससे ज़्यादा ख़ुलूस और मुहब्बत या उतने ही ख़ुलूस को पूरी तरह ज़ाहिर करो कि तुम उसकी क़द्र व क़ीमत को अच्छी तरह महसूस करते हो तो इस उसूल पर अमल के बाद शैतान को मुशकिल ही से हमला करने का मौक़ा मिलेगा। फिर भी अगर ताल्लुक़ात में ख़राबी पैदा होती नज़र आए तो कुछ चीज़ें हर मुसलमान भाई को अपने सामने रखनी चाहिएँ, और उनको सामने रखने के बाद अगर कोई ख़राबी पैदा होगी तो वह बड़ी आसानी के साथ दूर की जा सकती है। ताल्लुक़ात की ख़राबी की बुनियाद आम तौर पर वे शिकायतें बनती हैं जो एक भाई के दिल में दूसरे भाई की तरफ़ से पैदा होती हैं। शिकायतें पैदा होने की बुनियादें बहुत-सी हो सकती हैं और इस हिस्से में जिन चीज़ों पर चर्चा की गई है वह उन्हीं बुनियादों को ख़त्म करती हैं। हर शिकायत में जो चीज़ शामिल रहती है वह यह है कि जब किसी मुसलमान के दिल को अपने भाई की किसी बात या किसी काम से तकलीफ़ पहुँचती है तो शिकायत पैदा हो

जाती है। अगर बात बड़ी हो तो यह शिकायत खुद ताल्लुक़ात की ख़राबी के लिए काफ़ी होती है और अगर छोटी हो तो कई छोटी-छोटी बातें मिलकर एक शदीद एहसास पैदा कर देती हैं। इस बारे में वही बातें नज़र के सामने रखनी चाहिएँ जो बदगुमानी के बारे में कही गई हैं।

एक यह कि कोई मुसलमान दूसरे मुसलमान को शिकायत का मौक़ा अपनी तरफ़ से आने ही न दे। उसे इस बात की कोशिश करनी चाहिए कि उससे दूसरे के दिल को कभी कोई दुख-तकलीफ़ न पहुँचे।

दूसरी यह कि हर मुसलमान को अपने भाई के साथ ख़ुश-दिली से पेश आना चाहिए। नबी (सल्ल॰) की आला अख़लाक़ी तालीम का पूरा लिहाज़ रखना चाहिए और जहाँ तक हो सके इस बात की कोशिश करनी चाहिए कि कोई शिकायत पैदा न हो, और अगर पैदा हो तो तुरन्त उसे दिल से निकाल देना चाहिए।

तीसरी यह कि इन दोनों बातों के बावजूद अगर शिकायत पैदा हो जाए तो फिर उस बात को भी दिल में न रखना चाहिए। अगर न भुला सके तो, चाहे छोटी बात हो या बड़ी, तुरन्त उसको अपने भाई पर ज़ाहिर कर दे। अपने भाई की तरफ़ से दिल में ज़रा-सा भी मैल रखना और उसके दिल के मैल के साथ उससे मिलना बदतरीन किरदार है। इसमें कोई देर नहीं होनी चाहिए, बल्कि दिल की सफ़ाई के सुधार की तुरन्त कोशिश करनी चाहिए।

चौथी यह कि जिसको शिकायत बताई जाए वह उसपर नाराज़ न हो और नाक-भौं न चढ़ाए, बल्कि अपने भाई का शुक्रगुज़ार हो जिसने ख़ियानत का काम करने के बजाय उसपर ज़ाहिर कर दिया, पीठ पीछे न कहा। और फिर यह कि ताल्लुक़ को इतना क़ीमती समझा कि ज़रा-सी बात भी हुई तो तुरन्त सुधार की कोशिश की और उसे सुधार का मौक़ा दिया।

पाँचवीं यह कि जब उसको मालूम हो जाए कि उसके भाई के दिल में कोई शिकायत है तो तुरन्त सुधार की कोशिश करे। जितना वक़्त गुज़रता है उतनी ही ज़्यादा ख़राबी जड़ पकड़ती जाती है और जितना ताज़ा-ताज़ा फ़ितने को कुचल दिया जाए उतना ही बेहतर होता है। फिर अगर वाक़ई उससे ग़लती हुई हो तो उस ग़लती को खुले दिल से मान ले और उसपर

अपनी शर्मिन्दगी का इज़हार करे। अगर उस ग़लती के लिए कोई मुनासिब वजह हो तो उसे पेश करे और अगर ग़लती न हुई हो, बल्कि कोई ग़लतफ़हमी हो या उसकी कोई मुनासिब वजहें हों तो ग़लतफ़हमी को साफ़ कर देने की कोशिश करे। इस बारे में इनजील (बाइबल) में हज़रत ईसा (अलैहि॰) ने जो कहा वह एक मुसलमान के इस फ़रीज़े (कर्त्तव्य) पर असरदार अन्दाज़ में रौशनी डालता है। उन्होंने इस तरह की बात फ़रमाई कि अगर तू क़ुरबानगाह पर अपनी नज़र पूरी करता हो और वहाँ तुझे याद आए कि मेरे भाई को मुझसे शिकायत है तो वहीं क़ुरबानगाह के आगे ही अपनी नज़र छोड़ दे और जाकर अपने भाई से मिलाप कर, तब अपनी नज़र पूरी कर।

यह बड़े पते की बात कही गई है। तुम्हारा भाई तुमसे नाराज़ हो तो तुम्हारा एक बेहतर इनसान बनना और तुम्हारे ताल्लुक़ात का तुम्हारे भाई से खुशगवार बुनियाद पर क़ायम होना मुशकिल है। हम अल्लाह को जब ही खुश कर सकते हैं जब इबादत का अस्ल मक़सद पूरा हो। इसलिए नज़र पेश करने से पहले अपने भाई की शिकायत दूर करके अपनी हालत के सुधार की कोशिश करनी चाहिए और इस काम में ज़रा भी देर न करना चहिए।

और छठी बात यह है कि जब एक मुसलमान भाई अपनी ग़लती को मान ले तो उसको माफ़ कर देना उसका हक़ है। इसमें देरी नहीं करनी चाहिए। और अगर वह उज़्र या बहाना पेश करे तो उसको मजबूर समझना चाहिए और उसकी मजबूरी को मान लेना भी उसका हक़ है। और अगर वह ग़लतफ़हमी की सफ़ाई में कोई बात पेश करे तो उसकी बात पर यक़ीन कर लेना भी उसका हक़ है। इस मौक़े पर नबी (सल्ल॰) की यह हदीस याद रखनी चाहिए—

> "जिसने अपने किसी मुसलमान भाई से अपनी ग़लती पर उज़्र पेश किया और उसने उसको मजबूर न समझा या उसके उज़्र को क़बूल नहीं किया उसपर इतना गुनाह होगा कि जितना एक नाजाइज़ टैक्स लेनेवाले पर उसके उस ज़ुल्म का होता है।"
>
> (हदीस : इब्ने-माजा)

इन हिदायतों पर अमल उस वक़्त मुमकिन है जब इनसान अपने ताल्लुक़ात की क़द्र व क़ीमत को अच्छी तरह महसूस करता हो और उसके दिल में अपने भाई और अपने भाई के जज़बात की क़द्र हो और साथ ही उसे अच्छी तरह यह एहसास हो कि ताल्लुक़ात की ख़राबी कितना बड़ा गुनाह है। पहली चीज़ को पहले हिस्से की बातचीत और इसी हिस्से के दूसरे अंश की बातचीत के बाद अच्छी तरह समझा जा सकता है। दूसरी चीज़ के बारे में मैं बता चुका हूँ कि अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने इन ताल्लुक़ात की ख़राबी की अहमियत को इस तरह वाज़ेह किया है कि यह एक मूँढ़ देनेवाला उस्तरा है जो पूरे-के-पूरे दीन का सफ़ाया कर देता है। और जो आदमी यह जानता हो कि अस्ल कामयाबी आख़िरत (परलोक) की कामयाबी है वह ज़रूर ही अपने दीन को हर क़ीमत पर महफ़ूज़ रखेगा, और जो अपने दीन-धर्म को महफ़ूज़ रखना चाहेगा वह अपनी पूरी ताक़त-भर इन ताल्लुक़ात को कभी ख़राब न होने देगा। एक-दूसरे से नाराज़ रहने और ताल्लुक़ात तोड़ने के बारे में नबी (सल्ल॰) ने जो तम्बीहें की हैं वे बड़ी मुअस्सिर और बड़ी सख़्त हैं। एक बार नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "किसी मुसलमान के लिए यह बात हलाल नहीं कि वह अपने भाई को तीन दिन से ज़्यादा नाराज़ होकर छोड़ दे। दोनों मिलें तो एक अपना मुँह इधर करे और दूसरा उधर फेरे। उन दोनों में बेहतर वह शख़्स है जो सलाम से शुरू करे (यानी नाराज़गी दूर करके मेल-मिलाप की शुरुआत करे)। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इससे मेल-मिलाप करने में पहल करने की फ़ज़ीलत ज़ाहिर होती है। नबी (सल्ल॰) ने यह भी कहा कि अल्लाह के यहाँ ऐसे दो मुसलमान बन्दों के साथ क्या सुलूक होता है? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "लोगों के सारे अमल हफ़्ते में दो दिन सोमवार और जुमेरात (बृहस्पतिवार) को पेश होते हैं और सच्चे मुस्लिम बन्दे को बख़्श दिया जाता है सिवाय उसके कि जिसकी अपने मुसलमान भाई से कोई दुश्मनी हो। कहा जाता है कि उनको कुछ दिन के लिए छोड़ दो ताकि आपस में सुलह कर लें।" (हदीस : मुस्लिम, मिशकात)

जो आदमी तीन दिन तक अपने भाई को छोड़े रखे उसके बारे में नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया है–

"किसी मुसलमान के लिए जाइज़ नहीं कि वह अपने भाई को तीन दिन से ज़्यादा के लिए छोड़ दे, जो आदमी तीन दिन से अधिक अलग रहा और उस मुद्दत में मर गया तो वह दोज़ख़ (जहन्नम) में जाएगा।" (हदीस : अहमद, अबू-दाऊद, मिशकात)

और नबी (सल्ल.) ने यह भी फ़रमाया–

"जो आदमी अपने मुसलमान भाई को एक साल के लिए छोड़ दे तो वह ऐसा है जैसा कि उसने उसका ख़ून बहाया (यानी इतना गुनाह होगा)। (हदीस : अबू-दाऊद, मिशकात)

इस बारे में एक सूरते-हाल यह हो सकती है कि एक पक्ष ने हालात सुधारने की हर कोशिश करके ताल्लुक़ात को तोड़ा हो या यह कि झगड़े में वह हक़ पर हो, इस सूरत में अक़्ल के और शरीअत के मुताबिक़ उसपर गुनाह लागू नहीं होता। लेकिन इस सूरत में भी इसपर उभारा गया है कि अपने दिल की बड़ाई से काम लेते हुए अपने भाई को माफ़ कर दिया जाए और हक़ पर होते हुए भी झगड़ा ख़त्म कर दिया जाए। अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल.) एक हदीस में झगड़ा ख़त्म करने के लिए इस तरह उभारते हैं–

"जिसने झगड़ा-फ़साद छोड़ दिया जबकि वह हक़ पर है, उसके लिए जन्नत के बीच में एक महल बनाया जाता है और जिसने अपना अख़लाक़ बेहतर बनाया उसके लिए जन्नत की ऊँचाइयों पर महल बनाया जाता है।" (हदीस : तिरमिज़ी, मिशकात)

ज़ाहिर बात है कि अच्छे अख़लाक़ की सबसे ऊँची मंज़िल माफ़ कर देना है जिसके बदले इनसान जन्नत की सबसे ऊँची बुलन्दी पर जगह का हक़दार ठहराया जाएगा।

सुलह व मेल-मिलाप करने के साथ-साथ मुसलमान भाई और मुसलमान समाज का भी यह फ़र्ज़ है कि वह दो भाइयों के बीच ताल्लुक़ात पर निगाह रखे और जहाँ ख़राबी महसूस हो उसका सुधार कर दे। इसलिए कि इस सुधार पर ही ताल्लुक़ात की बुनियाद होती है और ये ताल्लुक़ात ही समाज

की ज़िन्दगी और आत्मा है।

क़ुरआन मजीद इस सुधार का इस तरह हुक्म देता है—

"ईमानवाले तो भाई-भाई हैं इसलिए अपने दो भाइयों के बीच सुलह करा दो।" (क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-10)

और ज़्यादती करनेवाले पक्ष से लड़ाई तक की भी हिदायत की है।

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने एक बार अपने प्यारे सहाबा (रज़ि॰) से पूछा, "मैं तुम्हें वह अमल बता दूँ जिसका सवाब (पुण्य) दर्जे में रोज़ा, सदक़ा, नमाज़ के सवाब से ज़्यादा है?" सहाबा (रज़ि॰) ने कहा, "हाँ ऐ अल्लाह के नबी, ज़रूर बताइए।" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"लोगों के बीच (ताल्लुक़ात का) सुधार करना। और लोगों के बीच ताल्लुक़ात में ख़राबी डालना दीन को मूँड़ डालना है।"

(हदीस : अबू-दाऊद, तिरमिज़ी)

इस सिलसिले में यह भी फ़रमाया (हालाँकि झूठ के बारे में इस्लाम का रवैया बड़ा सख़्त है)—

"वह आदमी झूठा नहीं जो लोगों के बीच सुलह कराए और भली बात कहे या भली बात पहुँचाए।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, मिशकात)

यानी एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ ऐसे अच्छे जज़बात पहुँचाए जो हक़ीक़त में ज़ाहिर न किए गए हों और जिनका इस तरह पहुँचाना सुधार का सबब बन सकता हो। इसमें बेहतर यह है कि बात इस अन्दाज़ में की जाए कि उसमें झूठ न हो और एक आदमी दूसरे की मुहब्बत और ख़ैरख़ाही का क़ायल हो जाए।

इन हिदायतों की रौशनी में अगर मुसलमान ख़ुद भी शिकायत का मौक़ा न दें और सुधार की कोशिश करते रहें और समाज भी चौकस रहे तो शैतान को झगड़ा-फ़साद पैदा करने का मौक़ा मुशकिल ही से मिल सकता है।

आख़िरी बात

भाईचारा, उलफ़त, दोस्ती और प्यार-मुहब्बत के ताल्लुक़ात ईमान की एक शर्त और इसका लाज़मी तक़ाज़ा हैं। जितना मक़सद प्यारा होगा उतना ही एक भाई के लिए अपने भाई से भाई-चारे का ताल्लुक़ भी गहरा होगा। जब एक का दुख-दर्द दूसरे भाई का दुख-दर्द और एक की तकलीफ़ दूसरे की तकलीफ़, एक की परेशानी दूसरे की परेशानी और एक की ख़ुशी दूसरे की ख़ुशी बन जाए तो ताल्लुक़ात एक पहलू से अपने मेयार (आदर्श) को पहुँच जाते हैं। और जब इसके साथ रहमत भी पैदा हो जाए और दीनी ख़ैरख़ाही भी तो फिर ताल्लुक़ात हर लिहाज़ से मेयारी हो जाते हैं और ऐसे ताल्लुक़ात ही एक जमाअत (संगठन) और तहरीक (आन्दोलन) को वह ज़िन्दगी और ऊर्जा प्रदान करते हैं जो उसकी कामयाबी के ज़मानतदार होते हैं। यह सबसे बड़ी नेमत जहाँ उन सारी शर्तों और तदबीरों को ध्यान में रखने से नसीब होती है जो अल्लाह और अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने बताई हैं वहाँ इसके लिए अल्लाह की तौफ़ीक़ भी ज़रूरी है। इसलिए कि यह पालनहार रब का दिया हुआ ख़ास उपहार है। तो तदबीरों के साथ-साथ अपने रब से गिड़गिड़ाकर दुआ करनी चाहिए कि वह इन ताल्लुक़ात को ख़राबी से महफ़ूज़ रखे और इनमें उलफ़त और प्यार-मुहब्बत पैदा करे। क़ुरआन में है—

> "और उसने ईमानवालों के दिल एक-दूसरे के साथ जोड़ दिए। तुम सारी ज़मीन की सारी दौलत भी ख़र्च कर डालते तो इन लोगों के दिल को न जोड़ सकते थे, मगर वह अल्लाह है जिसने इन लोगों के दिल जोड़े।" (क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-63)
>
> "(जो कहते हैं कि) ऐ हमारे रब, हमें और हमारे उन सब भाइयों को माफ़ कर दे जो हमसे पहले ईमान लाए हैं, और हमारे दिलों में ईमानवालों के लिए कोई गिला-शिकवा न रख, तू निहायत मेरहबान और रहमवाला है।" (क़ुरआन, सूरा-59 हश्र, आयत-10)

●●